हंसराज 'दर्शक'

दिल्ली : पटना : जयपुर

बर्फ के देवता हिमालय

और

उसके सुरक्षा-प्रहरी

जनरल जे० एन० चौधरी

को

सादर समर्पित

प्रकृति और पर्यटक

वैसे तो पर्यटन भारत के लिये कोई नई चीज नहीं है, क्योंकि अनादि-काल से धार्मिक और व्यापारिक यात्राएँ होती ही रही हैं किन्तु आज इसकी परिभाषा सीमित हो गई है। जिस यात्रा में सैलानी दृष्टिकोण प्रमुख हो, उसे ही पर्यटन अधिक माना जाता है। हर्ष का विषय है कि स्वतन्त्र भारत में पर्यटन की मनोवृत्ति दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है।

इधर पहाड़ों का आकर्षण भी लोगों को महसूस होने लगा है। पर्वतारोहण को भारत में भी वहीं महत्त्व दिया जाने लगा है जो पश्चिमी देशों में अब तक दिया जाता रहा है। यहाँ तक कि इसके विधिवत् प्रशिक्षण के लिये एक संस्था की स्थापना भी हो चुकी है। फिर भी पर्वतारोहण एक अलग चीज है और पहाड़ों पर पर्यटन दूसरी बात है। पर्वतारोही चुनौती की भावना लेकर पर्वतों पर जाता है जबकि पर्यटक पहाड़ों के सौन्दर्य-रस का पान करने वहाँ जाता है। वह प्रकृति को विभिन्न रंगों और रूपों में निरखता है और कुछ देर के लिये अपने को उसमें ही घुला-मिला देता है।

श्री हंसराज जी 'दर्शक' ने पहाड़ों की यात्रा एक पर्यटक के रूप में की है। अतः उनके वर्णन में एक भक्त की श्रद्धा या प्रेमी की सरसता ही परिलक्षित होती है न कि एक विजेता की अहम्मन्यता। अपने यात्रा-वृत्तांत को पुस्तक के माध्यम से अधिकाधिक पर्वतप्रेमी लोगों तक पहुँचाना ही उनका सदुद्देश्य है। अपने उद्देश्य में वह कितने सफल हुए हैं, यह तो प्रेमी पाठक ही बतायेंगे किन्तु उनकी सरल, कवितामय और रोचक शैली ने मुझे काफी प्रभावित किया है। उनका प्रयास स्पृहणीय है, अभिनन्दनीय है।

हिन्दी में यात्रा-साहित्य पर्याप्त नहीं कहा जा सकता और उसमें भी पहाड़ों, नदियों, झरनों और झीलों के बारे में बहुत कम लिखा गया है। क्या हुआ अगर यत्र-तत्र इनकी मनोरमता के बारे में जिक्र आ जावे जबकि ये अपने में स्वतन्त्र विषय हैं जिन पर यात्रियों को विस्तार के साथ लिखना

चाहिए। इस दृष्टि से श्री हंसराज जी 'दर्शक' का प्रयास स्तुत्य है। इस कमी की ओर प्रकाशक का ध्यान भी गया, इसके लिए वे भी बधाई के पात्र हैं।

श्री हंसराज जी 'दर्शक' कोरे दर्शक ही नहीं हैं, बल्कि वह एक अनुभवी पर्यटक और सैलानी साहित्यकार भी हैं। यह मैं उनके लम्बी अवधि के परिचय में भली-भाँति जान गया हूँ। उनकी विषय की पकड़ मजबूत है, इसलिए वह इधर-उधर भटकते नहीं हैं। यही कारण है कि 'बर्फ का संसार' एक यात्रा की डायरी मात्र नहीं है अपितु अपने विषय की इसमें सम्पूर्ण जानकारी, है और साथ-ही-साथ वैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। 'ग्लेशियर', 'तैरते हिमखण्ड', 'बर्फ से प्रलय', 'बर्फ के अनोखे उत्सव', 'उपयोगी झरने' और 'पहाड़ी कामगर' आदि अध्यायों में जिस खूबी के साथ दर्शक जी ने पर्वतों और पर्वतीय लोगों का वर्णन किया है वह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। लगता है पहाड़ पर बैठे-बैठे आप सभी दृश्य देख रहे हैं और यही लेखक की सबसे बड़ी सफलता है।

दो शब्द कलाकार श्री देवदत्त जी शर्मा के विषय में भी जिनके रेखा चित्रों ने प्रत्येक पृष्ठ को सुन्दरता और प्रत्येक वर्णन को सजीवता प्रदान की है, में न कहूँ तो पुस्तक के बारे में मेरा कुछ भी लिखना अपूर्ण ही होगा। कलाकार की तूलिका की समीक्षा तो कोई कला-समीक्षक ही कर सकता है किन्तु उसकी सराहना तो जन-साधारण भी कर सकता है। निस्संदेह कलाकार श्री देवदत्त जी शर्मा तूलिका के धनी हैं, यह चित्रों की प्रत्येक रेखा अपने आप बता रही है।

मुझे विश्वास है कि 'बर्फ का संसार' न केवल पाठकों का मनोरंजन करेगा या यात्रियों को प्रेरणा देगा अपितु माँ भारती के भण्डार की श्रीवृद्धि भी करेगा।

हिन्दी सहायक सम्पादक
सैनिक समाचार, नई दिल्ली
तिथि ११-७-६३

भगवत प्रसाद चतुर्वेदी

अपनी बात

'अमरनाथ दर्शन' पुस्तक के बाद मेरी दूसरी रचना 'बर्फ का संसार' आप के हाथों में है। इसको लिखने में जहाँ मेरे प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेम का आग्रह रहा है वहाँ यह भी कि 'बर्फ का संसार' अपने में एक अद्भुत संसार है—हिम के भिन्न-भिन्न रूप-रंगों का अनूठा संसार !

हमारे देश के उत्तरी सीमांत प्रदेश में असम से लेकर कश्मीर तक हिमालय यानी 'बर्फ का घर' ऊँची दीवार की तरह खड़ा है। यह भारत की संस्कृति, दर्शन, चिंतन व प्राकृतिक सम्पदा का प्रतीक तो है ही, साथ-ही-साथ पर्वतारोहण, वैज्ञानिक-अनुसन्धान, पर्यटन आदि दृष्टियों से भी विश्व-विख्यात है। प्राचीन समय से इसके हिम से भरपूर विराट सौन्दर्य और गौरव ने साहसी पुरुष और कवि हृदय दोनों को आकर्षित किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक के लिखने में हिमालय सम्बन्धी मेरा अल्प अध्ययन-भ्रमण और हिम के परम स्वच्छ मूक दिव्य स्वरूप ने प्रेरणा-स्रोत का काम किया। मैं नहीं जानता कि यह किस अंश तक और कितने उचित ढंग से प्रकट हुआ है, इसका निर्णय आप करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के बारे में मुझे कुछ स्नेह-स्रोतों से प्रोत्साहन मिला है। उनका मैं यहाँ आभार प्रकट करना चाहूँगा। इस क्रम में सैनिक समाचार के भूतपूर्व हिन्दी सहायक सम्पादक श्री भगवत प्रसाद जी चतुर्वेदी तथा रेडियो के बाल-विभाग के सहायक प्रोड्यूसर श्री बी० आर० नागर जी का, जिन्होंने मेरी यात्रा-सम्बन्धी कुछ अन्य रचनाओं को जनता-जनार्दन तक पहुँचाया। जनता-जनार्दन की कृपा कहूँगा कि यह पुस्तक अब उनके हाथों में है। इसके साथ-साथ अपने अग्रज और मनीषी समालोचक श्री जीवन प्रकाश जी जोशी का मैं बड़ा ही आभारी हूँ जिन्होंने मुझे सदा कुछ नये विषयों पर लिखते रहने के लिये प्रेरित किया है।

इस पुस्तक के नीरस विवरण से बचाने के लिए मैंने जिन कवियों-लेखकों आदि की रचनाओं का प्रासंगिक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पुस्तक में उपयोग किया है उनका मैं कृतज्ञ हूँ। अन्त में अपने कला-शिल्पी श्रद्धेय श्री देवदत्त जी शर्मा, ने इस पुस्तक के सौन्दर्य में स्थल-स्थल पर जो चित्रात्मक चाँद जड़े हुए हैं उसके लिए मैं उनका अत्यन्त ऋणी हूँ।

३७ ई० तिमारपुर
दिल्ली-६
१५ अगस्त १९६३

हंसराज 'दर्शक'

१. बर्फ के पहाड़	...	९
२. ग्लेशियर	...	१७
३. तैरते हिमखण्ड	...	२५
४. बर्फ से प्रलय	...	३०
५. बर्फ के अनोखे उत्सव	...	३४
६. उपयोगी झरने	...	३९
७. मनोरम झीलें	...	५१
८. बर्फ के पुल	...	६३
९. हिम मूर्तियाँ	...	६६
१०. हिम सुन्दरी	...	७३
११. बर्फ की बहार	...	८१
१२. पहाड़ी कामगर	...	८७
१३. हिम मानव	...	९८
१४. परिशिष्ठ	...	१०४

लेखक की रचनाएँ

१. अमरनाथ दर्शन

२. बर्फ का संसार

३. घुमक्कड़ भैया के पत्र

(प्रेस में)

बर्फ से ढका महागुनस पर्वत-शिखर

१

बर्फ के पहाड़

सन् १९६१ में समाचार पत्र में पढ़ा कि कश्मीर-स्थित 'महागुनस' दर्रे पर पाँच-छः फुट बर्फ पड़ चुकी है। साहसी यात्रियों का एक दल इसे देखने के लिए तेरह नवम्बर को 'पहलगाम' से रवाना होकर चौदह नवम्बर को वहाँ पहुँचेगा। उसके अगले दिन ही पाँवों में खुजली-सी होने लगी। यह संकेत था मेरे लिए एक लम्बे सफ़र करने का। सोचा, कहीं जाना तो पड़ेगा ही, क्यों न बर्फ के पहाड़ 'महागुनस' को ही देखने चल दें।

यात्रा का सामान तैयार कर, हम अपने चित्रकार मित्र के साथ दिल्ली से 'पठानकोट' तक रेल में और वहाँ से 'पहलगाम' तक बस में गये। फिर प्रस्थान से दो दिन पूर्व ही 'महागुनस' जाने वाले साहसी दल के साथ हम जा मिले। 'पहलगाम' समुद्र के तल से सात हज़ार दो सौ फुट की ऊँचाई पर स्थित, काश्मीर की एक मनोरम उपत्यका है। चारों ओर चीड़ और देवदार के पेड़ों से घिरी हुई इसकी पर्वत-श्रेणियों की रचना सचमुच एक हीरक-मणि की अंगूठी जैसी लगती है। 'पहलगाम' से आगे का मार्ग एक ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की बगल में से होकर जाता है और दूसरी ओर खाई में बहती एक पहाड़ी नदी की धवलधारा 'चन्दनबाड़ी' तक साथ रहती है। सर्दी के कारण इसका जल जहाँ-तहाँ जम जाता है। पानी का इस प्रकार जम जाना पुल का काम देता है। यह जमकर इतना सख्त हो जाता है कि उस से मनुष्य, टट्टू आदि सुविधा से पार हो सकते हैं। चन्दनबाड़ी से आगे टेढ़ा-मेढ़ा, संकरा, पर्वतीय मार्ग आरम्भ हो जाता है जो पैदल, डांडी अथता टट्टूओं की सहायता से तय किया जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ और किसी भी वाहन का निर्वाह नहीं हो पाता। 'महागुनस' 'पहलगाम' से अठारह मील दूर सिन्धु-तल से १४,७०० फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है।

तेरह नवम्बर के दिन सूर्योदय के साथ ही हमारे दल ने पद-यात्रा का शुभारम्भ किया। रास्ते का सारा मार्ग ऊबड़-खाबड़, सर्पाकार और पहाड़ों को काट-छाँटकर बनाया गया है। यहाँ पर बहुत सजग होकर चलना पड़ता है। कहीं-कहीं तो यह मार्ग इतना संकरा हो गया है कि दो यात्री भी एक साथ नहीं चल सकते। इसके साथ-ही-साथ स्थल-स्थल पर पाँवों के नीचे बिखरी हुई बर्फ से गिरने का भय भी बना रहता है। दिन-भर की यात्रा के उपरान्त सूर्यास्त तक हम 'जोजपाल' पहुँचे। यह स्थान चारों ओर से हिममंडित पर्वतों से घिरा होने के कारण ठहरने के लिए अत्युत्तम है। इसकी ऊँचाई ग्यारह हज़ार फुट है। यहाँ से आगे की चढ़ाई फिर कुछ कठिन-सी हो जाती है। रात तम्बू में बिताकर हम अगले दिन प्रातः दस बजे के लगभग 'महागुनस' आ गए।

यहाँ पर न कोई खेत-खलिहान था, न पेड़-पौधा। न कोई पत्थर-कंकर था और न ही पशु-पक्षी। केवल बर्फ-ही-बर्फ थी—चारों ओर, दूर-दूर तक बिछी हुई! हमारी दृष्टि जिधर भी जाती थी—बर्फ-ही-बर्फ दिखाई दे रही

थी। बर्फ अत्यधिक सर्दी से जम जाने के कारण घुले हुए संगमरमर की भाँति सफ़ेद, चमकीली और सख्त थी। हाँ, बीच-बीच में इधर-उधर धरती की सतह से ऊँची उठी हुई कुछ चोटियाँ थीं, बर्फ से ढकी हुई शुभ्र शंकु-सी। उनमें कुछ तो सूर्य की सुनहरी किरणों से नुकीले काँच की तरह चमक रही थीं और कुछ दुग्ध-फेन जैसी श्वेत। चिलचिलाती धूप में इन हिम-राशियों की छटा कुछ अनोखी ही होती है—जैसे किसी विशाल बिल्लौरी शीशे पर सूर्य की सीधी किरणें पड़ रही हों। सबका आकार पृथक-पृथक था। किसी का छोलदारी जैसा, तम्बू जैसा या किसी मन्दिर के गुम्बद से मिलता-जुलता। चोटियों के अलावा ढलानों पर, पगडंडियों पर, तथा खाइयों में दूर-दूर तक हिम का अखण्ड राज्य फैला हुआ था, एकमात्र हिम का राज्य !

बर्फ के इस पहाड़ पर चढ़ते समय हमें कई बार कठिनाई का सामना करना पड़ा। बल्लेम-सहित नुकीली छड़ी की सहायता से चार-चार, छः-छः कदम पर रुककर हम उस विस्तृत हिम-प्रदेश तक जा पहुँचे। कँप-कपाती सर्दी झेली, पतली हवा में श्वास-प्रश्वास की कठिनाइयों को सहन किया। परन्तु ऊपर पहुँचकर जब हमने भव्य हिम-मंडित गिरिशृंगों को देखा तब हमारी प्रसन्नता की सीमा न रही। हृदय गद्-गद् हो उठा और मन बाँसों उछलने लगा। उस समय हमें कुछ ऐसा लगा जैसे हम स्वर्ग में आ गये हैं। मार्ग की समस्त थकान का कष्ट जाता रहा। यहाँ प्रकृति अपने पूर्ण सात्विक स्वरूप में शोभायमान थी। वातावरण शांतिमय था। नीला-काश के नीचे शुभ्र-किरीट वस्त्रधारी उत्तुंग शैल-शिखर इतने मनोहारी और सुहावने लग रहे थे कि उनसे लौटकर आने को जी नहीं चाह रहा था। हिम-पर्वतों के विशाल समूह के बीच में स्थित यह रमणीय स्थान अपनी अलौकिक सुन्दरता के लिए संसार में प्रसिद्ध है।

सहसा ही कविवर श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की ये पंक्तियाँ हमारे अधरों से फूट पड़ीं :—

"मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव विराट !
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल !

मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !"

सचमुच, यहाँ आकर पर्यटकों एवं प्रकृति के दर्शकों को हिमालय के इस दिव्य स्वरूप की झाँकी के साक्षात् दर्शन होते हैं।

ऊँचे पहाड़ों पर कहीं-कहीं मार्ग इतना विकट हो जाता है कि हर पग फूँक-फूँककर रखना पड़ता है। हर क्षण संकटमय-सा प्रतीत होता है। मंज़िल तक पहुँचने के लिए यात्री को अपने पाँव दृढ़ता और सावधानी से रखने पड़ते हैं। चढ़ाई से उतराई की यात्रा और भी कठिन होती है। उतरते समय शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है और कदम-कदम पर सावधानी से काम लेना पड़ता है।

यहाँ का मौसव मैदानों से भिन्न होता है। हर समय तेज़ हिमानी वायु चलती रही है। तेज़ हवा के कारण कभी-कभी बर्फीली आँधी भी चलने लगती है। तब मिट्टी की धूल की जगह बर्फ के छोटे-छोटे कण सारे वायु-मंडल में उड़ते दिखाई देते हैं। आँधी की चाल तीस मील प्रति घन्टा से सौ मील घन्टा तक पहुँच जाती है। हवा में उड़ते हुए इन बर्फीले कणों को 'डायमन्ड डस्ट' यानी हीरों की धूल कहते हैं। आकाश से कभी-कभी मोटे-मोटे ओलों के रूप में चपल-वर्षा होने लगती है। बर्फ के ये ओले जब कंकर-पत्थरों जैसे मोटे-मोटे गोलों का रूप धारण करके ऊपर से गिरते हैं तब उसे 'ब्लिजर्ड' यानी बर्फीला तूफ़ान कहते हैं। गिरते समय बर्फ के इन गोलों से सांय-सांय करती हुई एक विचित्र-सी ध्वनि निकलती है। इनसे चोट लगती है जिससे उस समय यात्री का खुले में टिकना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं हिम-वर्षा के कारण यात्रियों को अपार कष्ट भी सहना पड़ता है।

पहाड़ों की यात्रा में साहस और अच्छे स्वास्थ्य की बड़ी आवश्यकता होती है। पर लोगों की यह मिथ्या धारणा है कि पहाड़ों पर चढ़ने वालों का अधिक बलिष्ट और दृढ़-काय होना ज़रूरी है। इसमें सन्देह नहीं कि कठिन कार्य में बल और साहस की आवश्यकता रहती है। अच्छा पर्यटक

बनने के लिए गठीले शरीर के ही समान सैलानी तबीयत, घुमक्कड़ी मन, सच्ची धुन और सब प्रकार के कष्टों को झेलने की क्षमता होना ज़रूरी है। कठिनाइयाँ भी ऐसी सख्त नहीं होती जितनी कि लोग समझते हैं। चढ़ाई में हवा के दवाब का कम होना एक विशेष कठिनाई है। हलकी हवा में मैदान में रहने वाला आदमी जल्दी-जल्दी हाँफने लगता है। परिश्रम का काम निरन्तर देर तक नहीं किया जा सकता। इससे यात्री को बार-बार रुककर साँस लेनी पड़ती है। जितने समय में हम मैदान में एक बार साँस लेते हैं उतने समय में हमें वहाँ कई बार साँस लेनी पड़ती है। बार-बार साँस लेने से फेफड़ों पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिससे दम घुटकर अचेत हो जाने के पश्चात् यात्री को यदि तुरन्त काफ़ी ऑक्सीजन न मिले तो उसका अन्त भी हो सकता है।

यहाँ कुछ क्षेत्रों में पानी की कमी रहती है जिसका काम बर्फ को पिघला कर लिया जाता है। बर्फ पर धूप की तेज़ चमक से आँखें चुधियाँ जाती हैं। कई बार बर्फ के उस जगमगाते हुए स्वच्छ-शुभ्र प्रकाश की ओर देखने से दर्शक अस्थायी रूप से अपनी दृष्टि भी खो बैठते हैं। सायंकाल सूर्यास्त के बाद भी बर्फ की चमक काफ़ी देर तक रहती है। यहाँ पर कभी-कभी रात के आठ बजे तक रोशनी बनी रहती है और दिन बहुत लम्बा लगता है। बर्फ के हाथ-पाँव के फूल जाने का रोग जिसे 'हिमदंश' कहते हैं बहुत ही कष्टप्रद और भयानक होता है। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त शरीर को कँपा देने वाली ठण्डी हवायें, घने कुहासे और बर्फ की बौछारों का सामना करना पड़ता है। इसी कारण हिमाच्छादित पर्वतों की यात्रा करने वाले पर्यटक और हिमारोही सदैव अपने साथ नुकीली छड़ियाँ, बर्फ काटने की कुल्हाड़ी, काला चश्मा, बर्फ पर चलने के लिए विशेष जूते, मार्ग निर्देशन के लिए हरी-लाल झण्डियाँ, चमड़े के थैले, हलके शिविर, गर्म कपड़े, दवाइयाँ, रस्सियाँ, ऑक्सीजन-यन्त्र आदि साथ ले जाते हैं।

हिमालय को भारत का शीशमुकुट कहा जाता है। इसकी अनेकानेक ऊँची-ऊँची चोटियाँ हिम का श्वेत मुकुट पहने हमारे देश के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक नेपाल, सिक्किम, भूतान, कुमायूँ, हिमाचल और काश्मीर के राज्यों में दूर तक फैली हुई हैं। इसकी लम्बाई १,५०० मील और चौड़ाई कोई १०० से २५० मील तक है। पर्वत-सम्राट हिमालय अपने देश

में ही नहीं बल्कि समस्त संसार के पर्यटकों और हिमारोहियों के लिये पर्वतारोहण, हिम-मानव की खोज, वन-पशु एवं ट्राऊट जाति की मछली का शिकार और अपने हँसते-खिलते उत्कृष्ट नैसर्गिक वैभव के लिए आकर्षण का महा-केन्द्र बना हुआ है।

हिमालय और पर्यटन

पर्यटन मनोरंजन भी है, शिक्षा भी और एक नशा भी। जिस किसी व्यक्ति को इसका नशा एक बार लग जाए तो फिर टूटता नहीं! घर पर बैठे-बैठे उसे ऐसा लगता है जैसे कोई उसका द्वार खट-खटाकर कह रहा हो—"चलो, यहाँ बैठे क्या करते हो!"

हिमालय में पर्यटन का एक अलग ही आकर्षण है। मैदान का यात्री वहाँ जाते समय एक स्वर्गिक कल्पना को लेकर जाता है। जैसे ही वह निकट पहुँचता है उसका मन टेढ़ी-मेढ़ी, ऊँची-नीची एवं सर्पाकार पगडंडियों, सड़कों पर चढ़ते समय थका-सा रहता है। परन्तु जब वह पर्वत-शिखरों पर पहुँचकर वहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है तब उसका मन आनन्द से झूम उठता है। सूर्योदय होते ही हिम-मंडित चोटियाँ उसे शक्ति-प्रेरणा प्रदान करती हैं, दोपहर में घाटियों से ऊपर उठते हुए बादामी-भूरे रंगों वाले बादलों का अभिनय उसे जीवन में फिर से जुट जाने के लिए उत्साहित करता है और सूर्यास्त के समय ढ़लते हुए सूर्य की सिन्दूरी आभा उसे जीवन-यात्रा का दार्शनिक पाठ पढ़ाती है। रात्रि की नीरवता में जब रजनी अपना काला आँचल फैलाकर सर्वत्र छा जाती है तब पर्यटक का हृदय दिनभर में प्रकृति-नटी के क्षण-क्षण बदलने वाले रूप-रंगों का स्मरण कर एक बार कह उठता है—"सुरम्यता ही परमात्मा है।"

हिमालय पर्वत पर जितना ऊपर चढ़ो प्राकृतिक सौन्दर्य निखरता ही चला जाता है। जितना सौन्दर्य हम पाँच से आठ हज़ार फुट तक बसे हिल-स्टेशनों में देखते है उससे कहीं अधिक दस-ग्यारह से पन्द्रह-सोलह हज़ार फुट की ऊँचाई पर होता है। वहाँ पर हरे-भरे पेड़-पौधों की जगह बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ, बर्फीले दर्रे, ग्लेशियर, बर्फ के पुल, शांत झीलें और नदियों के उद्गम-स्थान देखने को मिलते हैं। सभ्य जगत से दूर यहाँ

आकर पर्यटक को एक ऐसी अद्‌भुत पवित्रता की अनुभूति होने लगती है जो अन्तर की गहराइयों को छूकर सौन्दर्य उभारती है। मनुष्य इसके देखे बिना न जाने अपने को क्या कुछ समझता रहता है।

हिमालय पर्वतारोहण संस्थान

हिमालय पर चढ़ने के लिए सत्रह-अठारह हज़ार फुट की ऊँचाई से ऊपर मनुष्य को पर्वतारोहण की शिक्षा-दीक्षा लेनी पड़ती है। हमारे देश में इसका एक सैनिक स्कूल 'हिमालय पर्वतारोहण संस्थान' दार्जिलिंग में है। यह संस्था सन् १९५४ में स्थापित हुई थी। इसमें हर वर्ष कई सौ शिक्षार्थी पश्चिमी सिक्किम से १४,८०० फुट की ऊँचाई पर स्थित इसके बुनियादी शिविर में बर्फ काटने और बर्फ की चट्टानों पर चढ़ने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। हिमालय की कुछ चोटियाँ तो विश्वविख्यात हैं। इनमें माऊण्ट एवरेस्ट (सगर माथा)। कंचन जंघा, धौलगिरि, अन्नपूर्णा और नन्दादेवी प्रमुख हैं। यद्यपि इन सभी चोटियों पर मानव के पद्-चिह्न पड़ चुके हैं फिर भी वहाँ तक पहुँचने के लिए देश-विदेश के पर्वतारोही अपने दल-बल के साथ हर वर्ष कोशिश करते रहते हैं।

माउण्ट एवरेस्ट संसार का सर्वोच्च शिखर है। इस पर पहुँचने के लिए पिछले चालीस वर्षों में एक दर्जन से अधिक बार चढ़ाई की जा चुकी है। परन्तु सन् १९६२ तक दो ही दलों को सफलता मिली है। २९ मई सन् १९५३ में ब्रिटिश पर्वतारोही दल के दो सदस्य भारतीय शेरपा तेनजिंग नोर्गे और न्यूज़ीलैण्ड निवासी एडमण्ड हिलेरी शिखर तक पहुँचे और सन् १९५६ में स्विस पर्वतारोही दल को सफलता मिली। सन् १९६० में चीनी पर्वतारोही दल ने भी तिब्बत की ओर से एवरेस्ट-विजय का दावा किया, किन्तु यह सन्देहास्प्रद है।

हर्ष की बात है कि पिछले दो-तीन वर्षों में कुछ भारतीय पर्वतारोही दल अन्नपूर्णा (३), नीलकंठ, नन्दाकोट जैसी हिमालय की विश्वविख्यात चोटियों पर चढ़ने में सफल हुए हैं। प्रथम भारतीय पर्वतारोही दल ने ब्रिगेडियर ज्ञान सिंह के नेतृत्व में सन् १९६० में एवरेस्ट पर चढ़ाई की थी और २८,३०० फुट की ऊँचाई तक पहुँचा। मौसम खराब होने से उसे

वापस लौटना पड़ा। सन् १९६२ में मेजर डियास के नेतृत्व में दूसरा भारतीय दल २७,६०० फुट की ऊँचाई तक पहुँच गया। यह पर्वतारोही दल प्रतिकूल मौसम के विरुद्ध संघर्ष करता रहा। शिखर पर पहुँचने के लिए अवसर की प्रतीक्षा में उसे तीन रात लगभग अट्ठाइस हज़ार की ऊँचाई पर बितानी पड़ीं। विश्व के पर्वतारोहण के इतिहास में यह अभूतपूर्व अनुभव है।

हिमालय के ऊँचे शिखरों पर आरोहण के साथ-साथ अब ऋतु, भू-विज्ञान तथा मानवीय व्यवहार-उपचार सम्बन्धी बातों पर भी ध्यान दिया जाने लगा है। इसी उद्देश्य के हेतु सन् १९६३ में एवरेस्ट आरोहण करने वाले तीन अमरीकी पर्वतारोही दलों को शिखर तक पहुँचने की भी सफलता प्राप्त हुई है। पहले दल में जेम्स विटाकर और तेनजिंग के भतीजे शेरपा नावांग गोम्बू थे। दूसरे में बैरी विशप और लूथर जर्सटैड। तीसरे दल के विलियम अनसोल्ड और होर्नबिन को २२ मई के दिन पहली बार पश्चिमी रिज मार्ग से संसार के इस सर्वोच्च शिखर पर चढ़ने का महान श्रेय प्राप्त हुआ।

पिंडारी ग्लेशियर का एक दृश्य

२
ग्लेशियर

बर्फ के पहाड़ 'महागुनस' से लौटकर हम सत्रह नवम्बर की सन्ध्या तक 'पहलगाम' आ गये। उस पहाड़ पर चढ़ने वाले सभी सदस्य अगले दिन सबेरे बस में सवार होकर 'श्रीनगर' लौट गये। 'कोल्हाई' ग्लेशियर पहलगाम से चौदह मील की दूरी पर है। वहाँ जाने का हमारा पूर्व कोई

निश्चय नहीं था—लेकिन बर्फ का मधुर आकर्षण ही हमें खींचकर ले जाने लगा। इस प्रकार बीस नवम्बर को प्रातः दस बजे के लगभग हमने कोल्हाई ग्लेशियर की यात्रा पर प्रस्थान किया। पहलगाम से चलते समय आकाश में बादल छाये हुए थे और हिमानी वायु द्रुत गति से बह रही थी। आसमान जब बादलों से भरा हुआ होता है, तब दूर तक बादल कौन-से हैं और शिखर कौन-से हैं, यह पहचानना कठिन हो जाता है। छोटे-छोटे बादल तो यहाँ प्रायः गिरिराज की देह पर नित्य खेलते रहते हैं। कड़ाके के सर्दी के कारण भी उस समय मौसम बड़ा सुहावना था। हमें डर था कि यदि कहीं ताज़ा बर्फ गिरी तो हमें मार्ग से ही लौट कर आना पड़ेगा, परन्तु बाद में कुछ समय के बाद मौसम सुधरने लगा और धूप बर्फीली घाटियों में चमकने लगी। इधर धूप चमकी उधर सर्दी से सिकुड़े हुए हमारे गाल सुर्ख हो उठे और हम आगे बढ़ते हुए रात्रि विश्राम के लिए 'आड़ू' में जाकर रुके। यह स्थान 'पहलगाम' से सात मील दूर, नौ हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित है। साधारणतः यहाँ कोई यात्री नहीं आता। एकान्त और प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से 'आड़ू' अत्यन्त रमणीक स्थान है। आगे चलकर 'लिदरवट' नामक एक अधिक ऊँचा और रम्य स्थान मिलता है। यहीं से कोल्हाई ग्लेशियर का अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ने लगता है।

ग्लेशियर को हिन्दी में हिमनद, हिमसरिता अथवा बर्फ की नदी कहते हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर बर्फ के निरन्तर गिरते रहने से उसके दबाव के कारण पहाड़ का निचला भाग कभी-कभी ऊपर उठता हुआ बाहर की ओर निकलने लगता है। बच्चे जिस तरह बालू के टीले आदि बनाते है और एक ऊँचाई पाने पर बालू का बना टीला स्वयं ढह जाता है। ठीक वैसे ही बर्फ की यह चट्टान ढहती है। यह ढह कर वहीं नहीं पड़ी रहती बल्कि धीरे-धीरे रेंगती-फिसलती हुई ढलानों से नीचे की ओर सरकती हुई चली जाती है। कभी-कभी इसके फिसलने से एक गड़गड़ाहत की आवाज़ होती है जो चारों ओर फैलती हुई गुरुतर हो जाती है और अन्त में बहुत दूर तक जाकर क्षीण होते-होते नीरवता में खो जाती हैं। बर्फ के इस हिमखण्ड को ग्लेशियर या हिमनद कहते हैं। ग्लेशियर छोटे भी होते हैं और बड़े भी। कुछ तो मीलों तक फैले होते हैं। संसार का सबसे बड़ा ग्लेशियर 'बियर्डमोर' ग्लेशियर है। यह कोई एक सौ मील लम्बा है और दक्षिणी ध्रुव में स्थित है। दूसरे नम्बर पर साठ मील लम्बा और तीन सौ फुट ऊँचा

हंबोल्ड ग्लेशियर है। यह उत्तरी ध्रुव-स्थित ग्रीनलैण्ड में है।

हमारे देश में भी हिमालय पर्वत के ऊपरी भाग में कई ग्लेशियर हैं। इनमें कश्मीर का कोल्हाई ग्लेशियर—जहाँ पर हम पहुँचे थे, नेपाल का खुम्बू ग्लेशियर, गढ़वाल का भगीरथ ग्लेशियर और अल्मोड़े का पिंडारी ग्लेशियर बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

कोल्हाई ग्लेशियर

कोल्हाई ग्लेशियर 'लिदर' नदी के मुहाने पर चौदह हज़ार फुट की ऊँचाई पर आकाशस्पर्शी पर्वतों से कन्धा मिलाए हुये खड़ा है। इसी की ढलान पर हज़ारों वर्षों की जमी हुई बर्फ की कई पर्तें हैं। ये गजों ऊँची हैं और इसमें बर्फ के बेतरतीब जबड़े मुँह निकाले हुए खड़े हैं। जिससे फिसल कर बर्फ के बड़े-बड़े तोदें झील में जा गिरते हैं। कोल्हाई ग्लेशियर का दृश्य अद्भुत है। इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे दोनों ओर की पहाड़ियों के बीच फँसा हुआ यहाँ कोई विशाल, श्वेत अजगर बर्फीली साँसें छोड़ रहा हो। कोल्हाई ग्लेशियर की यात्रा का सबसे उत्तम मौसम सितम्बर और अक्तूबर का है। इसके अतिरिक्त कश्मीर में सोनमर्ग में छोटे-मोटे कई ग्लेशियर हैं जिससे उसे 'ग्लेशियर की घाटी' कहा जाता है।

खुम्बू ग्लेशियर

खुम्बू ग्लेशियर सत्रह हज़ार से बीस हज़ार फुट की ऊँचाई के मध्य में तीन हज़ार फुट गहरा हिम-प्रदेश है। यह टूटी-फूटी बर्फीली चट्टानों के असंख्य ढेरों का एक विशाल समूह है। इसके अनेक स्थलों पर बर्फ के कई मीनार-नुमा टीले दिखाई देते हैं। इसका हिमढाल बड़ा ही भयानक है। पर्वतारोही इसकी बर्फीली दीवार को काट-काटकर सीढ़ियों द्वारा और बर्फीली सतह की दरारों पर लकड़ी के तख्तों आदि के पुल बनाकर आगे बढ़ते हैं। खुम्बू ग्लेशियर को देखकर ऐसा लगता जैसे कोई अज्ञात् शक्ति ही इसका संचालन कर रही है। माउण्ट एवरेस्ट जाने के लिए इसी से होकर जाना पड़ता है। खुम्बू से ऊपर 'लाहोत्से' ग्लेशियर है जो सम्भ-

वतः संसार का सबसे ऊँचा ग्लेशियर है। इसकी सबसे ऊँची चोटी २७,८९० फुट है।

भगीरथ ग्लेशियर

भगीरथ ग्लेशियर लगभग पन्द्रह हज़ार फुट की ऊँचाई पर 'गोमुख' के पार्श्व भाग में खड़ा है। इसे कुछ लोग 'गंगा' ग्लेशियर भी कहते हैं। इसके सोलह मील लम्बे बर्फीले भू-भाग के नीचे बहती हुई पतित-पावनी गंगा की जलधारा 'गोमुख' में एक गुफ़ा से निकली है। इस धारा को देखा जाए तो यह पिघली हुई बर्फ है। ऐसा लगता है जैसे शीशे की तहें बिछी हों। कुछ लोगों का विचार है कि यहीं भगीरथी गाय के मुख के आकार जैसी चट्टानों से निकलती है। पर गोमुख का आकार गाय के मुख जैसा नहीं है। वास्तव में 'गो' का अर्थ है पृथ्वी। क्योंकि गंगा यहाँ पहली बार पृथ्वी से निकलकर बाहर प्रकट होती है, इसलिए इसका यह नामकरण हुआ है। गोमुख गंगोत्री से अठारह मील दूर सिन्धु-तट से १२,७७० फुट की ऊँचाई पर स्थित है।

गंगा की कहानी भारत की कहानी है। इसकी धारा से देश की सैकड़ों-हज़ारों मीलों की भूमि उपजाऊ बनी है। इससे निकलने वाली गंगा नहर लाखों बीघे भूमि की सिंचाई करती है। हरद्वार से कानपुर तक गंगा की नहर से हज़ारों कृषकों और लाखों करोड़ों मनुष्यों को अन्न प्राप्त होता है। इस नहर के कारण कई बिजली घर बनाये गए हैं जिससे करोड़ों व्यक्तियों को रोशनी मिलती है। कुछ वर्ष हुए हरद्वार के निकट पथरी बिजली घर का निर्माण हुआ है। इन बिजली घरों से जहाँ एक ओर रोशनी मिलती है वहाँ दूसरी ओर नदी के पानी से सिंचाई के कामों में सहायता भी मिलती है। अनेक उद्योग-धन्धे भी विद्युत की शक्ति से चलाए जा रहे हैं।

गंगा नदी की भाँति हमारे देश में आर्थिक दृष्टि से अब 'सतलज' नदी का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस पर बना योजना का महातीर्थ 'भाखड़ा बांध' सचमुच इन्जीनियरों की कला-कुशलता का एक अपूर्व चमत्कार है। यह बाँध दुनियाँ में सबसे ऊँचा बाँध है। ऊँचाई ७४० फुट है। इसके बाद ही अमरीका के ७२६ फुट ऊँचे हूवर डेम

का नम्बर आता है। भाखड़ा डैम के निर्माण से वर्षा ऋतु में बाढ़ की रोक-थाम के साथ-साथ पंजाब की शुष्क और राजस्थान की लाखों एकड़ मरु-भूमि में नहर द्वारा पानी देकर फसल पैदा की जाने लगी है। भाखड़ा की ४२५ मील लम्बी राजस्थान नहर दुनियां की सबसे बड़ी नहर होगी। डैम के जल-प्रपातों द्वारा पंजाब और दिल्ली के सैकड़ों गाँवों-नगरों को बिजली सप्लाई होने के बाद भी नंगल की विश्वविख्यात 'खाद्-फैक्ट्री' को बिजली यहाँ से मिल रही है। 'गोविन्द सागर' की विस्तृत जलराशि में मछलियों को पालने से अब सरकार को लाखों रुपये की वार्षिक आय होने लगेगी। इस प्रकार जिन झीलों अथवा नदियों के उद्गम स्थल ग्येशियर हैं वे सारी वर्ष ही बहती रहती हैं। कभी भी सूखती नहीं! बर्फीले पर्वतों से बर्फ के बड़े-बड़े तोदें गिरकर उनमें बहते-पिगलते रहते हैं। ग्लेशियर देश के लिए जल की आवश्यकता की बहुत हद तक पूर्ति करते हैं। इस प्रकार और चीज़ों की भाँति बर्फ के पहाड़ और ग्लेशियर भी हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। भागीरथ ग्लेशियर के निकट 'चतुरंगी' और 'कीर्ति' ग्लेशियर भी हैं।

पिण्डारी ग्लेशियर

पिण्डारी ग्लेशियर कुमायूँ में 'नन्दादेवी' और 'नन्दाकोट' की हिम-श्रेणियों के बीच १२,०८९ फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है। इसकी लम्बाई कोई दो मील और चौड़ाई तीन सौ से चार सौ गज़ के लगभग है। इसको जाने का मार्ग 'अलमोड़ा' और 'रानीखेत' से होकर जाता है। वहाँ से यह एक सौ मील की दूरी पर है। इसको देखने का सर्वोत्तम मौसम अप्रैल और मई तथा सितम्बर और अक्तूबर का है। पिंडारी ग्लेशियर का सारा प्रदेश हिम की अनगिनत बुर्जियों, अटारियों, स्तम्भों तथा त्रिकोण स्तूपों के विशाल समूह से भरा पड़ा प्रतीत होता है। चारों ओर हिमशिलाओं का एक अस्त-व्यस्त जमघट-सा दिखता है। इस ग्लेशियर के पार्श्व भाग में एक-दूसरा ग्लेशियर भी है—नाम है 'मिलाम' ग्लेशियर, जो इस प्रदेश का सबसे बड़ा ग्लेशियर है।

ग्लेशियर के फिसलते रहने से इसमें बहुत सी दरारें पड़ जाती हैं। यह दरारें बहुत ही खतरनाक होती हैं। क्योंकि कभी-कभी ताज़ा गिरने वाली

नर्म-नर्म बर्फ दरारों को ऊपर से थोड़ा-सा ढक देती है जिससे अन्दर का भाग खोखला ही रहता है। इसको पार करते हुए पर्यटकों एवं पर्वतारोहियों को बड़ी ही सावधानी से काम लेना पड़ता है। भूल से यदि कोई पर्वतारोही या पशु इसकी लपेट में आ गया तो फिर खैर नहीं। दलदल की भाँति वह बर्फ के नीचे धसता-ही-धसता चला जाता है। पर्वतीय ढलान से फिसलते-सरकते हुए किसी ग्लेशियर को यदि आप देखें तो ऐसा लगता है जैसे उतार पर कोई प्राणी सँभल-सँभल कर धीरे-धीरे नीचे की ओर रेंगता हुआ आ रहा हो।

दो रोमांचकारी घटनाएँ

पहली घटना एवरेस्ट-विजेता शेरपा सरदार तेनजिंग के बारे में है। सन् १९३९ के एवरेस्ट-अभियान में वह अपने साथियों के साथ एक ग्लेशियर की लपेट में आ गया था। उसने स्वयं इसे एक जगह बताया है कि उसका सिर बर्फ में फँस गया था। तब उसे विश्वास हो गया कि उसका अन्त आ गया है। साहस बटोरते हुए अपनी पूरी शक्ति के साथ वह बहुत देर तक निरन्तर प्रयत्न करता रहा। अपनी बर्फ की कुल्हाड़ी को वह चारों ओर घुमाता रहा। कुछ देर के लिए वह शीर्षासन की अवस्था में भी लटका रहा। किसी ने सच ही कहा है—

> "जाको राखे साइयाँ,
> मार न सके कोय।
> बाल न बाँका कर सके,
> जो जग बैरी होय॥"

सौभाग्यवश बर्फ का खिसकना बन्द हो गया। कुल्हाड़ी की मदद से और थोड़ी-सी कोशिश के बाद वह बर्फ से बाहर आ गया। यदि वह कहीं दो-चार फुट बर्फ में और धस गया होता या बर्फ का गिरना बन्द न होता तो निश्चय ही आज एवरेस्ट विजय का महान श्रेय उसे प्राप्त न हो सकता। दूसरी घटना इस प्रकार है—

सन् १९१६ की बात है। हमारे प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू अपनी

युवावस्था में कश्मीर के 'जोजीला' नामक दर्रों से अमरनाथ गुफा की ओर यात्रा पर गये थे। कश्मीर का यह दर्रा तेरह हज़ार फुट ऊँचा है। वहाँ नित्य बर्फ की आँधियाँ चला करती हैं और उसकी विचित्र ध्वनि होती है जिससे उसका नाम 'जोजीला' पड़ा है। यात्रा से लौटकर उन्होंने 'हिमालय की एक घटना' का रोमाँचकारी वर्णन यों किया है—

"रस्सियों के सहारे हमने कई हिमनदों को पार किया। सोचा कि चढ़ाई समाप्त होने से हमारी कठिनाइयों की इति श्री हो जाएगी। पर इसमें बड़ा धोखा था। ताज़ा गिरने वाली बर्फ खतरनाक दरारों को ऊपर से ढक देती है। धसक कर एक विशाल दरार में जा गिरा। कोई भी चीज़ नीचे पहुँच कर हज़ारों वर्षों तक भूगर्भ-शात्रियों के लिए अनुसन्धान के लिए निश्चित रूप से सुरक्षित रह सकती है। पर सौभाग्य से रस्सी नहीं छूटी और मैं दरार के बाजू थामे रहा और शीघ्र ही ऊपर खींच लिया गया।"
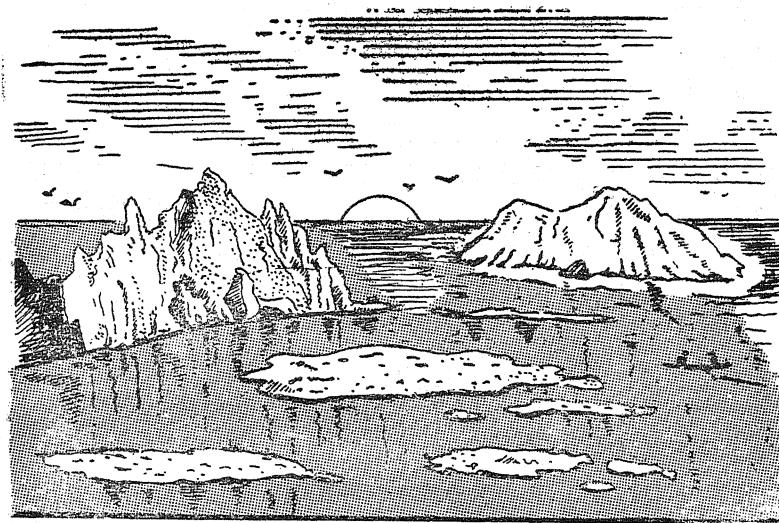
बर्फ में कोई भी वस्तु खराब नहीं होती है। कई बार ऐसा भी देखने में आया है कि मनुष्य और जानवरों के अस्थि-पिंजर कई सौ वर्ष के पश्चात् भी बर्फ में दबे वैसे-के-वैसे मिलते हैं। अभी हाल में ही भारतीय कीट-विशेषज्ञों के एक दल को हिमाचल-स्थित 'सोनापानी' ग्लेशियर और सर-कुण्ड झील के निकट बर्फ में दबे हुए बीस लाख वर्ष पूर्व के प्राचीन पक्षी-जीवन के कुछ अवशेष मिले हैं। कुमायूँ-स्थिति 'रूपकुण्ड' झील के पास भी पाँच-छः सौ वर्ष पूर्व के कई मानव-अवशेष प्राप्त हुए हैं जिसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

बिषैली बूटियाँ

हिमालय की ऊँचाइयों पर जीवन मुश्किल से पनपता है। जीव-जन्तु की तो बात ही क्या, पेड़-पौधों तक का भी पूर्णतः अभाव रहता है। वर्षा के महीनों में हिम जब अपनी श्वेत ओढ़नी उतार फेंकती है तब बारह से अठारह हज़ार फुट की ऊँचाई के बीच ढलानों और घाटियों में छोटे-छोटे फूलों का एक रंगीन गलीचा-सा बिछ जाता है। मैदानी फूलों की तरह ये दो-चार दिन में मुरझा नहीं जाते बल्कि कई सप्ताह तक खिले रहते

हैं। यद्यपि ये देखने में बहुत सुन्दर लगते हैं परन्तु ये विषैले होते हैं। इसके अतिरिक्त बर्फीली घाटियों में नाना प्रकार की जहरीली बूटियाँ उगी रहती हैं। कोई-कोई तो ऐसी होती हैं कि शरीर के जिस भाग में लग जाए, उसे सुजा देती है। शिमला के पहाड़ों में भी बिच्छू-बूटी पाई जाती है। इसके पत्तों और टहनियों पर छोटे-छोटे और नुकीले बाल उगे रहते हैं। इसके छूते ही बड़ी जलन और चुभन-सी होती है। सचमुच यह आश्चर्य की ही बात है कि बिच्छू-जैसी डंक मारने वाली इस बूटी के पास पालक के पत्तों-जैसा एक पौधा भी उगा रहता है। इसके पत्तों को तोड़कर जलन वाले स्थान पर रगड़ने से तत्काल आराम आ जाता है।

कुछ दिन पहले की बात है। बर्लिटन के पहाड़ों में उगने वाली बिच्छु-बूटी के छूने से एक शिकारी बालक की मृत्यु तक हुई है। वहाँ दो शिकारी झाड़ियों के बीच में से मार्ग बनाते हुए आगे बढ़ रहे थे। तभी उन दोनों को बिच्छू-बूटियाँ छू गईं और उनके डंक-सा चुभने लगा। किंतु दोनों उसका ध्यान दिये बिना आगे बढ़ते गये। कुछ ही देर चलने के बाद दोनों को ऊंघ आने लगी और अन्त में शिथिल होकर एक झाड़ी में गिर पड़े। वहाँ वे उसी अवस्था में सारी रात पड़े रहे। सौभाग्यवश इधर से एक दूसरा शिकारी दल आ निकला। उस दल के लोगों ने देखा कि एक व्यक्ति के प्राण-पखेरू उड़ चुके हैं और दूसरा बिल्कुल अचेत पड़ा हुआ है। उस अचेत प्राणी को उठाकर वे अपने साथ ले गए और औषधालय में उसका उपचार कराया। कुछ दिनों के बाद वह पहले की तरह स्वस्थ हो गया। चिकित्सा-विशेषज्ञों का मत है कि बिच्छू-बूटी के काटने की यह प्रथम घटना है।

विशाल जलनिधि में कुछ तैरते हिमखण्ड

३

तैरते हिमखण्ड

बर्फ के पहाड़ धरती पर ही नहीं बल्कि समुद्रों में भी पहुँच जाते हैं। पहले ऐसा विचार था कि बर्फ के तैरते हिमखण्ड समुद्रों के निकटवर्ती बर्फीले पहाड़ों से फिसलते-फिसलते समुद्र में पहुँच जाते हैं। पर अब यह विचार बदल गया है। नई खोज के अनुसार यह बात भ्रमपूर्ण सिद्ध हुई है।

समुद्रों के तटवर्ती स्थानों पर भी बर्फ के गिरने से और पृथ्वी के अत्यधिक ठण्डी होने से बर्फ के पहाड़ बन जाते हैं। तेज़ वायु के चलने और समुद्री लहरों से टकरा कर ये पर्वत कभी-कभी टूट-कटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और अलग-अलग भागों में लहरों के साथ समुद्रों में दूर-दूर तक बहने लगते हैं। समुद्रों में बहते बर्फ के इन खण्डों को हम 'आइस बर्ग' यानी तैरते हिमखण्ड कहते हैं।

बर्फ पानी से हल्की होती है। इसका अधिक भाग पानी में डूबा रहता है। आइस-बर्ग का बहुत अधिक हिस्सा समुद्र के अन्दर ही रहता है। कई बार जहाजों वाले यह अनुमान भी नहीं लगा पाते कि यहाँ कोई आइस-बर्ग है। पहले लोग ऐसा समझते थे कि यदि कोई तैरता हिमखण्ड जल से दस फुट ऊँचा दिखाई देता है तो उसकी ऊँचाई अनुमानतः अस्सी-नब्बे फुट होगी। पर अब यह बात ठीक प्रमाणित नहीं हुई है। फिर भी यह ठीक ही है कि उसका अत्यधिक भाग जल के अन्दर ही रहता है। कई स्थानों में बर्फ के इन तैरते हिमखण्डों का केवल एक चौथाई भाग तक भी जल से ऊपर दिखाई दिया है।

तैरते हिमखण्डों का आकार-प्रकार एक तरह का नहीं होता। किसी का किले-जैसा, किसी का पर्वत-जैसा, किसी का मगरमच्छ-जैसा, किसी का त्रिकोण-जैसा, किसी का त्रिशूल-जैसा या किसी का पतंग-जैसा। इनकी ऊँचाई की बात मत पूछिए! किसी-किसी हिमखण्ड की चोटी समद्र की सतह से एक से दो हज़ार फुट तक ऊँची, आकाश से बातें करती हुई प्रतीत होती है।

तैरता झरना

अमरीका की 'कोलोरेडी' नदी पर स्थित तैरता हुआ एक बर्फीला झरना है जो समस्त संसार में प्रकृति का एक अत्यन्त कला-विशिष्ट चमत्कार कहा जाता है। इसकी लम्बाई २१७ मील, चौड़ाई चार से अठारह मील तक और गहराई एक मील के लगभग है। जल-सतह से अनेक पर्वत-शिखर अपना सिर ऊपर उठाए खड़े दिखाई देते हैं जो अनुमानतः संसार के कुछ प्रमुख पर्वत-शिखरों से भी अधिक ऊँचे हैं।

इस विशाल तैरते झरने के अन्धकार में बहने वाली नदी बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ती। केवल उसका आभास-मात्र ही होता है। जब कभी वहाँ की वायु धीमी होकर शान्त होने लगती है तब कहीं वहाँ पर जल के बहने तथा गिरने की मन्द-मन्द ध्वनि सुनाई देती है।

तैरते हिमखण्ड जहाजों के लिए बहुत ही संहारक होते हैं। ये इतने सख्त होते हैं जैसे चट्टानें हों। ध्रुवीय प्रदेशों की यात्रा करने वाले जहाजों के मल्लाहों को ऐसे बर्फीले पर्वतों से प्रायः बचना पड़ता है। न जाने कितने ही बड़े-बड़े जहाज़ इनसे टकरा कर समुद्र की गोद में चले जा चके हैं।

एक दुर्घटना

एक बार की बात है कि एक सैनिक जहाज़ 'न्यूफाउंड लैंड' के किनारे से लगभग तीन सौ मील की दूरी पर जाकर एक ऐसे ही तैरते हिमखण्ड से टकरा गया था। पर वह बच गया और किसी तरह 'सेंटजान' नामक बन्दरगाह तक लाया गया। वहाँ पहुँचकर देखा गया कि उसकी छत पर बर्फ-ही-बर्फ बिछी हुई थी। उसे निकाल कर तोला गया तो उसका वज़न कोई दस हज़ार मन के लगभग था। बन्दरगाह तक पहुँचने से पहले भी मार्ग में इतनी ही बर्फ निकाल कर जगह-जगह समुद्र में फेंकी जा चुकी थी।

हर्ष का विषय है कि अब तैरते हिमखण्डों से बचने और इन पर विजय पाने के लिए पिछले कुछ वर्षों से वैज्ञानिक खोज हो रही है। सन् १९५८ में परमाणु शक्ति से चलने वाली संसार की सर्व प्रथम पनडुब्बी 'नाटिलस' में सवार होकर ११६ व्यक्तियों ने अमरीका-स्थिति 'न्यू लन्दन' बन्दरगाह से उत्तरी ध्रुव तक के विशाल बर्फीले समुद्री-मार्ग के नीचे की साहसिक यात्रा की है। उसका रोमांचकारी वर्णन विलियम आर एन्डरसन ने कुछ इस प्रकार किया है—

''हम सैंट लारेंस द्वीप के पश्चिमी किनारे की ओर से उत्तर की ओर अग्रसर होते रहे। वहाँ के कोने के चक्कर लगाने के बाद हमने मध्य की

ओर का रास्ता अपनाया। तभी सामने के क्षितिज से एक प्रकार की डरावनी-सी झलक आ रही थी। हमने इसे पहले भी देखा था। उत्तर के लोग इसे 'बर्फ की झलक' कहते हैं। एक घन्टे के अन्दर ही हमने बर्फ की पहली चट्टान देखी। आकार में छोटी थी। जैसे-जैसे हम उत्तर की ओर बढ़ते गए अधिक बर्फ मिलती गई। ये चट्टानें पहले से बड़ी थीं। इनमें कुछ तो नगर के चार ब्लाक के समान थीं। शीघ्र ही सामने का सारा क्षितिज बर्फ से ढक गया। यह इतना घना था कि इसमें से गुज़रना मुश्किल था। बर्फ का पहला टुकड़ा हमारे ऊपर से निकला। हमारे यन्त्र ने बताया कि उसकी मोटाई आठ फुट थी और उसके बाद हमारे ऊपर की बर्फ बढ़ती गई। शीघ्र ही हम लगभग ठोस बर्फ के नीचे थे। अचानक ही हम ३५ फुट मोटे बर्फ के एक टुकड़े के नीचे से गुज़रे। मैंने फौरन ही अनुमान लगाया कि यह समुद्री बर्फ नहीं थी। यह तो गहरी-कठोर बर्फ थी जो कि किसी सुदूर किनारे से टूटकर आ गई थी। यह एक हिमखण्ड के समान थी।

'अलास्का' को पार करने के थोड़ी ही देर बाद हमें ध्रुवीय बर्फ की चट्टानें देखने को मिलीं। हम समुद्र की सतह से १२० फुट नीचे चले गए। कुछ मिनट बाद बर्फ फिर हमारे ऊपर से निकल रही थी। उस समय हम ६२ फुट मोटे एक विशाल हिमखण्ड के नीचे से गुज़र रहे थे जो लगभग एक मील लम्बा होगा। मैं डर रहा था कि बस अब 'नाटिलस' की बर्फ से टकराने की आवाज़ आई, अब आई। सैकिण्ड भी घण्टे प्रतीत हो रहे थे। पर बर्फ की मोटाई बढ़ती जा रही थी। अकस्मात् ही वह हमारे मस्तूल के ऊपरी छोर से केवल पाँच फुट रह गई थी। यदि कोई आदमी वहाँ खड़ा होता तो अवश्य ही वह उस तक पहुँच कर उसे छू सकता था। मैं इस दुर्घटना के लिए तैयार हो गया था। मुझे विश्वास था कि हम अवश्य ही टकरायेंगे। पर अचानक ही बर्फ पतली हो गई। हम बर्फ के एक इतने बड़े पर्वत के नीचे से गुज़र रहे थे कि जिससे अमरीका का हर एक स्त्री, पुरुष और बालक के लिए एक सौ पौण्ड का गोला बन सकता था। उत्तरी ध्रुव की ओर आगे बढ़ते हुए हमने एक नई प्रकार की बर्फ देखी। वह गहरे भूरे रंग के बादल-सी लग रही थी। वहाँ बड़ा ही विचित्र दृश्य था। मैंने झट से नियन्त्रण-कक्ष में जाकर समुद्र की गहराई सूचक यन्त्र की ओर देखा। उसने बताया कि हम एक बड़े ही विशाल पर्वत के ऊपर से जा रहे हैं जो कि समुद्र की तलहटी से आठ हज़ार फुट ऊपर सीधा खड़ा था।"

हमारे देश में हिमालय की ऊँची चोटियों की सुरम्य गोद में समुद्र की सतह से दस से पन्द्रह हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित कश्मीर की कौंसरनाग, शेषनाग, कातरनाग, तुलुयाँ, अफारवट और तिब्बत की मानसरोवर नामक झीलों में भी छोटे-छोटे बर्फ के कई तोदें तथा सल्लियाँ, मई-जून के गर्म महीनों में तैरते हुए दिखाई देते हैं। ये आकार में पृथक्-पृथक् होते हैं। कोई गोलाकार होता है तो कोई त्रिभुजाकार! इनमें ग्लेशियर की बर्फ सरकती-गिरती रहती है। किनारों की धुली हुई बर्फ पन्ने की भाँति चमकती रहती है। इन्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे कुछ हिमहंस झील में शालीनता से तैर रहे हों। सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय ये बहुत ही सुहावने-लुभावने लगते हैं और दिन-भर के बदलते हुए सूर्य के प्रकाश में अनेक रंगों में परिवर्तित होते रहते हैं।

४

बर्फ से प्रलय

आज के वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि प्रलय सम्भव है। इसके होने में कोई विशेष समय अर्थात् कुछ दिन-सप्ताह-महीने नहीं लगेंगे, बल्कि यह सब कुछ पलक झपकते ही हो जाएगा। तब किसी को सोचने-समझने, का या अपने बचाव करने का अवसर ही नहीं मिलेगा।

और इस प्रकार की पौराणिक और काव्यात्मक कथाएँ, अभिव्यंजनाएँ भी बहुत-सी मिलती हैं। दूर जाने की क्या ज़रूरत है, कविवर जयशंकर 'प्रसाद' की 'कामायनी' का आरम्भ जल-प्रलय के वातावरण से ही हुआ, जिसमें उन्होंने हिम का ही संकेत तत्त्व दिया है—

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह !
नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन,
× × ×
दूर-दूर तक विस्तृत था हिम,
स्तब्ध उसी के हृदय समान।"

इन उद्धरणों से प्रलय और हिम का एक अनूठा सम्बन्ध जुड़ा हुआ लगता है।

ध्रुवीय महाद्वीप

हमारी पृथ्वी पर जितनी बर्फ है उसका दो-तिहाई से भी अधिक भाग ग्रीनलैण्ड, उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव में है। ध्रुवीय प्रदेशों की खोज करने वाले वैज्ञानिकों और नाविकों ने इन्हें 'बर्फानी महाद्वीप, बताया है। यह नाम ठीक ही है क्योंकि यहाँ का सारा-का-सारा भू-भाग बारहों महीने बर्फ से ढका रहता है। चारों ओर बर्फ के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं देता। यहाँ पर कहीं-कहीं तो बर्फ की चार किलोमीटर यानी ढाई मील तक की मोटी पर्त जमी रहती है।

ग्रीनलैण्ड के अन्दर की बर्फ वस्तुतः एक विशाल ग्लेशियर है और लगभग पन्द्रह सौ मील लम्बे तथा नौ सौ मील चौड़े आकार में है जिसकी सतह धीरे-धीरे किनारों से उठते-उठते नौ हज़ार फुट तक ऊँची हो गई है। ध्रुवीय प्रदेशों में केवल ग्रीनलैण्ड में ही आबादी है। यहाँ की जनसंख्या तीस हज़ार के लगभग है। ग्रीनलैण्ड के मूल निवासी 'एस्किमो' जाति के हैं। वह अपने को 'इनूक' कहते हैं। जिसका अर्थ है 'हिम का का मनुष्य'। यहाँ के लोग विदेशी लोगों को 'क्राब्नलूक' कहकर पुकारते हैं। क्राब्नलूक का अर्थ है वह मनुष्य जिसकी बड़ी-बड़ी भौहें हों। वास्तव में बात यह है कि एस्किमो की भवें नहीं होतीं। एस्किमो बर्फ का घर बना कर रहते हैं जिसे वे 'इग्लू' कहते हैं। इसमें ऊपर की ओर एक छोटा-सा प्रवेश द्वार होता है जिसमें लेटकर हिम-कुटीर के अन्दर जाना होता है। ये लोग एक घर में तीस-चालीस आदमी मिलकर रहते हैं। बर्फ की बौछारों से बचने के लिए इग्लू की छत गुम्बद-नुमा होती है। यहाँ की भूमि सदा बर्फ की मोटी पर्त से ढकी रहती है, इसलिए कुछ भी पैदा नहीं होता। एस्किमो को मछली तथा मांस पर ही निर्वाह करना पड़ता है। यहाँ पर सील मछली, बालरस, (समुद्री घोड़ा) केरिव्यू जाति का बारहसिंहा, रेण्डियर तथा ध्रुवीय बैल पाये जाते हैं। मछली के शिकार के लिये एस्किमो के पास नुकीली नौका होती है जिसमें बैठकर वह समुद्र में जाता है। इसे 'कयाक' कहते हैं। इसके डूबने का डर नहीं होता। यहाँ के कुत्ते एस्किमो के जीवन का वरदान है। वे स्लेज गाड़ियों में सामान खींचते हैं तथा रेण्डियर के शिकार में सहायता करते हैं। मांस का एक टुकड़ा खाकर ये इनके साथ दिन भर भागते रहते हैं। ध्रुव प्रदेश का सबसे भयंकर पशु

सफेद भालू है। इसका रंग बर्फ-जैसा सफेद होता है। यह कई बार दो टांगों पर भी चलता देखा गया है। यह प्रायः समुद्र के अन्दर रहता है। संसार के साधारण अन्य देशों के भालू मांस नहीं खाते, पर यह मछली का शिकार करके खूब मांस खाता है।

ग्रीनलैण्ड और उत्तरी ध्रुव की अपेक्षा दक्षिणी ध्रुव की परिस्थितियाँ बहुत ही कठिन हैं। यहाँ पर बड़े-बड़े पंखों वाले पेंगुइन पक्षी के अतिरिक्त और कोई नहीं होता। पेंगुइन बड़ा ही विचित्र पक्षी है। इसके पंख तो होते हैं पर यह उड़ नहीं सकता। यहाँ पर हर समय दम तोड़ देने वाली प्रचण्ड बर्फीली हवाएँ चलती रहती हैं। मौसम हर क्षण बदलता रहता है। हवा की गति एक सौ मील तक रहती है। तापमान हर समय शून्य से ४० से ८० डिगरी नीचे तक रहती है। ठंड इतनी पड़ती है कि घर के कपड़ों में छिपाई हुई ब्रांडी भी जम जाती है। कुकर के प्रयोग करने वाला अहकोहल भी इतना ठंडा हो जाता है कि जल नहीं पाता। स्लेज-गाड़ियों की लकड़ी इतनी अकड़ जाती है कि जिनकी मरम्मत बार-बार करना आवश्यक हो जाता है। धातु ऐसी टूटती है जैसे ककड़ी या मूली। ६ अप्रैल १६०६ को उत्तरी ध्रुव तथा १४ दिसम्बर १६११ को दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचने वाले संसार के साहसी प्रवीरों में अमरीका के राबर्ट पियरी और नार्वे के अमण्डसन स्काट प्रथम मानव थे। ये दोनों ऐसे हिम-वीर मानव थे जिन्होंने संकट के साये में जोवन की विजय आँक दी।

अत्यधिक शीत के कारण निरन्तर गिरने वाला हिम पिघल नहीं पाता बल्कि कंकर-पत्थर-चट्टानों की भाँति ठोस होता रहता है। बर्फ की उन ठोस चट्टानों पर ऊपर से नर्म-नर्म बर्फ पड़ती रहती है। इससे नीचे की ठोस बर्फ और भी अधिक ठोस हो जाती है। इस प्रकार बर्फ के अनगिनत पर्तों का निर्माण होता रहता है। विज्ञान द्वारा यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि हिमपात के निरंतर होने से बर्फ की मोटाई धीरे-धीरे बढ़ती रहती है। बढ़ते-बढ़ते बर्फ का यह ढेर मिट्टी और बालू की तरह ढहने लगता है। बर्फ ढहकर ग्लेशियर के रूप में बहने लगती है। गर्म होने पर वह ग्लेशियर पिघलने लगता है। पृथक्-पृथक् स्थानों पर पिघलते हुए हिमनद की चाल में भी अन्तर होता है। कहीं पर इसकी गति इतनी मन्द होती है कि सप्ताह में एक ही इंच चल पाता है और कहीं-कहीं पर यह सौ फुट प्रति

दिन भी चल सकता है। यह गति गर्मी तथा बर्फ के अधिक ठोस होने पर निर्भर होती है।

यह भी प्रमाणित हो चुका है कि कुछ समुद्रों की सतह बढ़ रही है। यह हर शताब्दी में लगभग तीन इंच ऊपर बढ़ती जा रही है। इससे यह सिद्ध हो गया कि हिमनदों में जमी बर्फ पिघल-पिघल कर समुद्रों में निरन्तर आ रही है। वैज्ञानिकों का ऐसा विचार हैं कि समुद्रों में तैरते हिमखण्डों के पिघलने के कारण समुद्र की सतह में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

हिमनदों की बर्फ के पिघलने की रोक-थाम के लिए कुछ रासायनिक पदार्थों का निर्माण हुआ है। वैज्ञानिकों का मत है कि यदि ये रासायनिक पदार्थ बर्फ पर छिड़क दिये जाएँ तो बर्फ के पिघलने में देर लगेगी। ऐसा भी अनुभव किया जा रहा है कि गर्मी की ऋतु में पिघलने वाली बर्फ का पानी घाटियों में रोक लेने की सुव्यवस्था की जाए जिससे यह समुद्रों में न पहुँचे और इसका यथोचित लाभ उठाया जाए। हम जैसा कि पहले बता चुके हैं कि हिमनदों के पिघलने से समुद्रों की सतह दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इस पर बर्फ के विशेषज्ञों की यह भी धारणा है कि पृथ्वी के हिमनदों पर की सारी-की- सारी बर्फ यदि एक दम पिघल जाए तो समुद्रों की सतह लगभग दो-तीन सौ फुट ऊँची उठ जाएगी। इस महाप्रलय से संसार के कई प्रदेश-के-प्रदेश जलमग्न हो जायेंगे। बर्फ के इस संहारक तूफान के कारण समस्त पृथ्वी एक नये युग में परिवर्तित हो सकती है।

अटलाँटिक महासागर की खोज

अटलाँटिक महासागर की खोज के अनुसार यह पता चला है कि दस हज़ार वर्ष पूर्व वहाँ पर पृथ्वी थी। हमारी तरह ही वहाँ पर मनुष्य, पशु, और पक्षी रहते थे। एक दिन अकस्मात् वहाँ पर प्रलय आ गई और वह सम्पूर्ण प्रदेश जलमग्न हो गया। आज वहाँ पर समुद्र अपनी सत्ता में तल्लीन है।

गुलमर्ग में स्कीइंग करते हुए खिलाड़ी

५

बर्फ के अनोखे उत्सव

बर्फ यदि एक ओर प्रलय कारिणी है तो इसके उत्सव और खेल भी कम मनोरंजक और दिलचस्प नहीं होते ! क्रिकेट, फुटबाल, टैनिस, हाकी, बालीबाल आदि खेलों की भाँति विश्व के शीत-प्रधान देशों में बर्फ के अनोखे खेल भी बहुत ही लोकप्रिय हैं। कनाडा में बर्फ पर हाकी का

खेल, नार्वे, हालैण्ड, स्वीडन तथा स्विटज़रलैण्ड में स्केटिंग और स्कीइंग के खेल पसन्द किये जाते हैं। सर्दियों के मौसम में नीदरलैण्ड-स्थित फ्रीज़लैण्ड का एक सौ पच्चीस मील लम्बा सारा-का-सारा प्रदेश जब बर्फ से ढक जाता है, तब यहाँ के लोग अपने खेतों और फार्मों पर काम-धन्धा बन्द करके, बर्फ पर फिसलने वाले जूते पहन कर हर्षोल्लास से सारे प्रदेश की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। बर्फ से ढका यह पूरा रास्ता बिल्कुल सपाट और समतल है जिस पर यहाँ के निवासी पन्द्रह-सोलह मील प्रति घण्टा चल कर आठ-नौ घण्टे में सारे प्रदेश की यात्रा तय कर लेते हैं।

भारत में बर्फ के उत्सव बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजों की देन हैं। इसका सबसे पहला प्रयोग सन् १९०४-७ में जनरल कर्क पैट्रिक ने कश्मीर-स्थिति 'गुलमर्ग' में किया जो वहाँ शिकार खेलने गया था। आज 'शिमला' और 'गुलमर्ग' में हिमपात के भयंकर पाले और सख्त सर्दी के महीनों में भी बर्फ पर खेलने के लिए देश भर के खिलाड़ी और दर्शक हर वर्ष सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में दूर-दूर से यहाँ आते हैं।

पहाड़ी प्रदेशों में हिमपात का मौसम प्रायः दिसम्बर के प्रारम्भ से मार्च के अन्त तक बना रहता है। कभी-कभी नवम्बर और अप्रैल के महीनों में भी बर्फ पड़ने लगती है। बर्फ पर खेले जाने वाले कई खेल हैं, पर इनमें से तीन तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। पहला स्कीइंग अथवा शींग, दूसरा स्केटिंग और तीसरा स्लेजिंग का।

स्कींग

स्कींग या शींग का खेल बर्फ के सभी खेलों में से रुचिकर और रोमाँचकारी है जो देखते ही बनता है। हमारे देश के पश्चिमोत्तर में गिरिराज हिमालय की नौ-दस हज़ार फुट ऊँची बर्फ से लदी पर्वतीय ढलानों पर स्कींग की जाती है। कश्मीर में नौ हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित गुलमर्ग-खिल्लनमर्ग में स्कींग की एक उत्तम क्रीड़ा स्थली है। परन्तु कुशल खिलाड़ी वहाँ से और भी ऊपर जाना पसन्द करते हैं। यहाँ का सबसे उत्तम स्थल 'लिली व्हाईट शोल्डर' है। यह जगह समुद्र-तल से बारह हज़ार फुट की ऊँचाई पर है। वहाँ से गुलमर्ग तक की तीन मील लम्बी

ढलान है जो एकदम सीधी है। तीन मील का यह लम्बा बर्फीला रास्ता खिलाड़ी तेज़ी से फिसलता हुआ दस-पन्द्रह मिनटों में ही सुविधा से तय कर लेता है। इस खेल में मोड़ों पर खिलाड़ियों को सावधान रखने के लिए लाल और हरी झंडियों का प्रयोग भी किया जाता है।

पहले-पहल हमारे देश में केवल 'गुलमर्ग' में ही स्कीइंग की क्रीड़ा-स्थली थी। यहाँ पर 'स्की क्लब ऑफ इण्डिया' नाम से एक क्लब भी है। परन्तु हिमाचल प्रदेश की स्थापना के पश्चात् वहाँ की सरकार ने इस ओर विशेष ध्यान देकर 'हिमाचल विन्टर स्पोर्ट्स क्लब' को जन्म दिया। यह कल्ब शिमला से लगभग नौ मील दूर हिन्द-तिब्बत रोड पर स्थित 'कुफ़री' के समीप 'चिनी बंगला' में है। वहाँ पर प्रतिवर्ष एक प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है। कुछ समय पूर्व 'गुलमर्ग सैनिक स्कूल' के दो शिक्षकों के साथ इस क्लब के कुछ खिलाड़ी स्कीइंग करने के लिए ९,६०० फुट ऊँची 'नारकंडा' और १०, ५०० फुट ऊँची 'हाटू' पर्वत-चोटी पर पहुँचे थे।

स्की अथवा शी एक प्रकार का बूट होता है जिसके नीचे लगभग छः-सात फुट लम्बे और पाँच-छः इंच चौड़े लकड़ी के तिर्छे पटरे (फट्टे) लगे होते हैं। इसे पहन कर पाँव की एड़ी को आप जिधर चाहें सुविधा से घुमा-फिरा सकते हैं। स्कीइंग करने वालों के दोनों हाथों में मजबूत नुकीली छड़ियाँ होती हैं जो बर्फ में रुकने-मुड़ने के लिए ब्रेक का काम देती हैं। धूप में सूर्य की चमक और भी तेज़ हो जाती है जिससे बचने के लिए, स्कीइंग करने वाले धूप में अपनी आँखों पर 'गागिल' यानी काला चश्मा लगा लेते हैं। हिममण्डित पर्वतों की ढलानों पर स्कीइंग में एक दूसरे से होड़ लेते, तेज़ी से दौड़ते-बहते युवक-युवतियों को दूर से देखकर ऐसा लगता है जैसे खड्डों की ओर बड़े-बड़े पक्षी पंख फैलाये उड़ते हुए जा रहे हों।

आइस स्केटिंग

बर्फ का दूसरा खेल आइस स्केटिंग का है। यह भारत में केवल शिमला में ही खेला जाता है। कभी-कभी किसी विशेष अवसर पर काश्मीर में 'श्रीनगर' के क्लब में भी इसका प्रबन्ध किया जाता है।

शिमला में 'रिज' मैदान के नीचे स्केटिंग-ग्राउण्ड में पानी को कृत्रिम उपायों से जमाकर प्रत्येक वर्ष नवम्बर से फरवरी के अन्त तक प्रातः-सायं लोग स्केटिंग करते हैं। कोई भी व्यक्ति निश्चित शुल्क देकर उस सीजन के लिए इसका सदस्य बन सकता है। जिस दिन आकाश में बादल हों, उस दिन पानी के ठीक तरह से न जम सकने के कारण स्केटिंग का खेल नहीं खेला जाता। स्केटिंग के दिन सूचनार्थ नगरपालिका के कार्यालय की छत पर लाल रंग की एक झण्डी वायु में लहरा दी जाती। इसके देखने के हेतु खिलाड़ी और दर्शक बड़ी उत्सुकता से इस सूचना-झण्डी की हर रोज सुबह-शाम प्रतीक्षा करते हैं।

स्केटिंग करने वालों के बूटों के तलों पर लोहे के स्केट लगे होते हैं। युवक-युवतियाँ, बालक-बालिकाएँ और स्त्री-पुरुष इसे पहन कर बर्फीली ग्राउण्ड में बड़ी सुविधा से नाच-कूद और दौड़ सकते हैं। स्केटिंग में हाकी का खेल बड़े ही विचित्र प्रकार से खेला जाता है। इसमें हाकी की जगह आगे से मुड़े हुए लम्बे-लम्बे बाँसों का प्रयोग किया जाता है। गोल्फ़ का खेल इससे बहुत मिलता-जुलता है। अन्तर केवल इतना है कि वहाँ पर लोग घोड़े पर सवार होते हैं और यहाँ पर स्केट पर। क्रिसमिस के दिनों में शिमला स्केटिंग क्लब हर वर्ष एक 'फैन्सी-शो' का भी आयोजन करती है जो सचमुच देखने की चीज़ होती है। सुहावनी रंगीन शाम, चाँदनी रात तथा अँधेरी रात को बिजली के चमचमाते प्रकाश में चमकीले-भड़कीले परिधान पहने, स्वास्थ्य की लालिमा लिए हाथों-में-हाथ डाल-कर स्त्री-पुरुष और युवक-युवतियाँ स्केटिंग करते हुए ऐसे लगते हैं मानो इन्द्रपुरी के विशाल मंच पर सभी नर्तक और नर्तकियाँ एक ही साथ रास-रति के अलौकिक-नृत्य का प्रदर्शन कर रहे हों।

स्लेजिंग

स्लेजिंग बच्चों के लिए बर्फ का प्रिय खेल है। हिमपात के पश्चात् ही छोटे-छोटे बच्चे अपनी-अपनी स्लेजों को उठाकर पर्वतीय मार्गों पर स्ले-जिंग करने के लिए पर्वत-शिखरों पर पहुँच जाते हैं। स्लेज लकड़ी की बनी होती है। इसके आगे रबड़ लगी होती है जो मुड़ते समय ब्रेक का काम देती है। इसके नीचे कोई पहिया नहीं होता जिससे इसका नाम 'स्लेज' पड़ गया

है। वास्तव में स्लेज बिना पहिये की उस गाड़ी को कहते हैं जिसे उत्तरी ध्रुव में बर्फ पर कुत्ते या रेण्डियर चलाते हैं। ढलानों पर पहुँचकर बच्चे स्लेजों पर बैठकर तेज़ी से फिसलते हुए कुछ ही मिनटों में खड्ड की ओर नीचे पहुँच जाते हैं। नीचे जाकर अपनी-अपनी स्लेजों को फिर से हाथों में उठाकर हिममण्डित चोटियों से बार-बार नीचे की ओर फिसलते रहते हैं। स्लेजिंग करते हुए किसी बालक को दूर से देखकर ऐसा लगता है जैसे पर्वत से कोई झरना झूमता-इठलाता हुआ आ रहा है।

मसूरी का कैम्पटी प्रपात

६

उपयोगी झरने

कश्मीर में बर्फ के पहाड़ों को देखने के बाद हम २६ नवम्बर को दिल्ली लौट आये। घर आते ही 'मसूरी' से अपने कलाकार मित्र का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था—"दर्शक भैया, यदि मसूरी में झरनों और

जल-प्रपातों की सुन्दर दृश्यावली और अलौकिक स्वर-लहरी सुनना चाहते हो तो फौरन चले आओ ! आजकल यहाँ पर पर्वतों के आँचल में अल्हड़-पन से बहते-गिरते झरनों की अनेकानेक राग-रागनियाँ मुखरित हो उठी हैं।"

दिल्ली में एक सप्ताह ठहरकर ३ दिसम्बर को मोटर में सवार होकर हम मसूरी आ गये। यह रम्य नगरी दिल्ली से लगभग दो सौ मील दूर शिवालक की आकाश-स्पर्शी पहाड़ियों पर ६,५०० फुट से ७,८०० फुट की ऊँचाई पर बसी हुई है। मसूरी में दिन भर रुककर हम अगले दिन सुबह-सबेरे ही वहाँ के 'जमना ब्रिज' को देखने के लिये पैदल चल दिये। मुश्किल से ही हम पाँच-छः मील चले होंगे कि एकाएक हमारे कानों में साँय-साँय करती हुई आवाज़ सुनाई देने लगी। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जा रहे थे त्यों-त्यों साँय-साँय करती वह आवाज़ और भी तीव्र होती जा रही थी। बहुत सोचा कि यह किसकी आवाज़ हो सकती है, पर कुछ समझ में नहीं आया। अन्त में हैरान होकर राह चलते हुए एक पहाड़ी मज़दूर से पूछा—

"अरे भाई, यह किस चीज़ की आवाज़ आ रही है।"

बाईं ओर के बर्फीले पर्वतों की तरफ संकेत करते हुए झट से उसने हमें बताया—

"यह आवाज़ और किसी चीज़ की नहीं है बल्कि पहाड़ों से गिरते हुए पानी की है। वहाँ पर एक बड़ा-सा झरना है जिसे लोग 'कैम्पटी' झरना कहते हैं।"

कैम्पटी प्रपात

थोड़ी-सी देर चलने के पश्चात् हम कैम्पटी जल प्रपात के निकट आ गये। यहाँ पर प्रकृति ने सुषमा-प्रेमियों के लिए अपने मुक्त हस्त से शोभा बिखेरी है। आकाश-स्पर्शी शैल-शृंगों की छाती को चीरकर लगभग दो सौ पचास फुट की ऊँचाई से दूध की भाँति श्वेत कल-कल निनाद

करतीं कई जल-धाराएँ अविराम गति से नीचे की ओर गिरती रहती हैं। इन मदमाती धाराओं के गिरने से एक छोटा-सा कुण्ड बन गया है जिसके शीतल-स्वच्छ जल में स्नान आदि करने से मार्ग की सारी शारीरिक थकान काफूर हो जाती है। प्रपात की स्वर्गिक स्वर-लहरी के साथ घाटी के लहराते जल-मग्न हरे-पीले पौधों को देखकर ऐसा लगता है मानो तबले के तोन ताल पर इन्द्रलोक की अप्सराएँ हरी-धानी चुनरियाँ ओढ़े अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन कर परस्पर होड़ लगा रही हैं। तड़कीली-भड़कीली नगरी दिल्ली का कोलाहलमय जीवन जब-जब मुझे पागल बना देता है और गरमी के मौसम में लू की गर्म-गर्म लपटें मेरे शरीर को तपाने लगती हैं तब-तब अनायास मेरा मन पर्वतों की रानी 'मसूरी' के इस शांत एवं स्पंदन-हीन वातावरण में पहुँचकर विश्राम पाने लगता है। पर यह कितने खेद की बात है कि मसूरी में आकर भो नब्बे प्रतिशत दर्शक कैम्पटी प्रपात के इस विराट् वैभव से वंचित रह जाते हैं। वे लोग कृत्रिम शृंगार व चमकीली वेष-भूषा में यहाँ भो मालरोड के एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर काटने में व्यस्त रहते हैं और मसूरी को यहाँ तक ही सीमित रखते हैं। यहाँ आने पर यदि मसूरी में मालरोड ही है तो दिल्ली का कनाट प्लेस इसमे किसी तरह कम नहीं! काश वे प्रकृति की नैसर्गिक महत्ता को देख और समझ सकते!

कैम्पटी प्रपात के कुण्ड के पास एक झोंपड़ी भी थी। उसमें से कभी 'घूं-घूं' और कभी 'घर-घर' की ध्वनि पानी के गिरने के कारण से धीमे-धीमे स्वर में निरन्तर आ रही थी और साथ ही वहीं से जल की एक मोटी वेगवती धारा बाहर की ओर बह रही थी। यहाँ पहुँचकर हमने देखा कि फटे-पुराने कपड़े पहने एक पहाड़ी पुरुष बाहर आ रहा था। उस समय उसका शरीर आटे से लथपथ था। वास्तव में उस झोंपड़ी में एक 'पनचक्की' थी जो पानी से चलती है। यहाँ की भाषा में इसे 'घट' या 'घ्राट' कहते हैं। पहाड़ी लोग दूर-दूर से यहाँ आकर गेहूँ, मक्का आदि पिसवाते हैं।

भट्टा प्रपात

कैम्पटी झरना एक प्राकृतिक झरना है जिसका जल अपने आप से

ही पर्वतीय चट्टानों से टकराता हुआ गिरता रहता है। हमारे देश में ऐसे झरने भी हैं जिसके जल को एक स्थान पर इकट्ठा करके और फिर कुछ विशेष ऊँचाई से गिराकर बिजली पैदा की जाती है। मसूरी में 'भट्टा' नाम का एक ऐसा ही झरना है जहाँ से 'देहरादून' और 'मसूरी' को बिजली सप्लाई होती है।

यहाँ पर पानी के बड़े-बड़े तालाब हैं। भट्टा झरने का जल एक बड़ी नहर से सीढ़ियों द्वारा तालाबों में बड़ी सुन्दरता से लाया गया है। तत्पश्चात् जल को बड़े-बड़े पाइपों द्वारा दूसरे तालाबों में ले जाया जाता है, जो बिजली पैदा करने वाले यन्त्रों को चलाते हैं। इस प्रकार नदियों की भाँति झरने भी देश की उन्नति के लिए बहुत ही सहायक एवं उपयोगी हैं।

झरने एक ही आकार-प्रकार और नाम के नहीं बल्कि कई तरह के होते हैं। पानी जब समतल या कुछ ऊबड़-खाबड़ भूमि पर बहता है तब इसे 'चश्मा' कहते हैं। जब पानी कुछ विशेष ऊँचाई से गिरता है तब इसे प्रपात यानी 'फाल' कहते हैं और जब पानी धरती के अन्दर से बाहर की ओर फूट पड़ता है तब इसे 'सोता' या 'स्रोत' कहते हैं। जहाँ पर पृथ्वी में एक ही साथ अनेक सोते फूट पड़ते हैं वहाँ पर अपार जलनिधि के कारण इसे 'झील', 'ताल' या 'सरोवर' कहते हैं। भारत में अलग-अलग प्रदेशों के झरनों को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। कश्मीरी भाषा में इन्हें 'नाग' और 'बल' पंजाबी में 'बावड़ी' या 'बाऊली' तथा उत्तर और मध्य प्रदेशों की क्षेत्रीय भाषाओं में 'धारा', 'ताल' और 'कुण्ड' कहते हैं।

सहस्रधारा

पहाड़ों में कई रासायनिक पदार्थ पाये जाते हैं—जैसे लोहा, गन्धक, चूना, नमक, सोडा, कारबानिक एसिड। पर्वतों में बहने वाले झरने इन पदार्थों को अपने साथ ले आते हैं। कैलशियम स्वास्थ्य के लिए एक आवश्यक तत्त्व है। इससे हमारी हड्डियों की पुष्टि होती है।

'सहस्त्रधारा' नाम की एक अनोखी कन्दरा देहरादून से आठ मील दूर 'नागिल' की पथरीली पहाड़ियों के बीच द्रुत गति से बहने वाली एक पहाड़ी नदी के दायें तट पर स्थित है। इसमें कैलशियम की एक हज़ार या कई सौ धाराएँ एक साथ रात-दिन निरन्तर गिरती रहती हैं। इसे यहाँ की भाषा में 'सहंसरधारा' कहते हैं। वास्तव में यहाँ पर चूने का पहाड़ है जिससे इसका जल स्वास्थ्य के लिये बहुत ही उपयोगी है। यात्री इन धाराओं के नीचे बैठकर आनन्द से स्नान करते हैं और पर्वत पर कोई झरना या सोता न देखकर मन-ही-मन प्रकृति की अनोखी लीला पर आश्चर्य करने लगते हैं। कन्दरा में कैलशियम के कारण ही छोटी-छोटी पत्तियों और फूलों पर टपकते हुए जल-बिन्दुओं के खनिज तत्त्व अपना आवरण चढ़ाते रहते हैं जिससे कुछ दिनों के बाद ये सुन्दर पत्थर-से दिखने लगते हैं।

सहस्त्रधारा में कैलशियम के इस झरने के निकट ही गन्धक का एक दूसरा शीतल सोता भी है। इसका स्वच्छ जल धरती से फूटता रहता है। इसके पास खड़े होते ही दुर्गन्ध आने लगती है पर यात्री नाक-मुँह न सिकोड़ कर इसके जल को चल्लू में भर-भर कर खुशी से पीते हैं। रक्तविकार या चर्मरोग से पीड़ित रोगी दूर-दूर से यहाँ आकर प्राकृतिक पद्धति के अनुसार स्वयं अपना उपचार करते हैं और कुछ यात्री तो यहाँ के जल को गंगाजल की भाँति बोतलों में भरकर लौटते समय अपने साथ भी ले जाते हैं। यदि इस स्थान पर कोई प्राकृतिक चिकित्सालय होता तो इस स्थान के स्वास्थ्यकर जलवायु के कारण रोगियों को स्वास्थ्य लाभ में बड़ी शीघ्रता होती। पर खुशी की बात यह है कि सरकार ने अब इस ओर ध्यान देकर हाल ही में पर्यटकों के ठहरने के लिये एक विश्राम-गृह बनवाया है।

'सहस्त्रधारा' सचमुच प्रकृति की एक निराली देन है। यह स्थली समुद्र-तल से ढाई हज़ार फुट ऊँची है। यहाँ पर न तो भगवान् भास्कर गर्मियों में दिल्ली की तरह अग्नि-वर्षा करते हैं और न ही जाड़े के दिनों में मसूरी की भाँति भयंकर पाला पड़ता है। हर ऋतु में यहाँ पर पहाड़ी नदी के इधर-उधर बिखरी हुई बड़ी-बड़ी चट्टानों पर बैठकर दर्शक ऊँची-नीची पहाड़ियों पर की हरियाली देख और प्रगाढ़ शान्ति का अनुभव कर अपने

को बिलकुल भूल जाते हैं। यह जगह 'पिकनिक' के लिये बहुत ही उपयुक्त है। इसलिए यहाँ पर हर रविवार को देहरादून और मसूरी से आये हुए प्रकृति-प्रेमियों का मेला-सा लग जाता है।

तत्तापानी

गन्धक के सोते अधिकतर गर्म होते हैं। पिघली हुई बर्फ-सी शीतल जलधारा के साथ खौलते जल के समान जल-सोतों का होना निस्सन्देह अचरज की बात है। शिमला से लगभग तीस मील दूर हिमाचल के शैल-शृंगों के बीच बहती 'सतलज' नदी के दायें तट पर स्थित 'तत्त पानी' भी एक ऐसा ही अनोखा स्थल है। कुछ वर्ष पूर्व सर्दी के दिनों में एक बार हम वहाँ पर गये थे। उसके गर्म जल में स्नान करते समय हमने चावल और आलू उबालकर खूब मज़े से खाए। इनके पकाने का एक विशेष उपाय है। चावलों को कपड़े में बाँधकर कुंड में लटकाने स कुछ ही देर में पक जाते हैं। गर्म पानी में कपड़े की गाँठ यदि अधिक समय तक पड़ी रहे तो चावलों की खीर-सी बन जाती है। तत्तापानी की ऊँचाई समुद्र-तल से १,७०० फुट है।

वशिष्ठ कुण्ड

तत्तापानी की भाँति हिमाचल प्रदेश का कुल्लू-स्थित 'वशिष्ठ' कुण्ड बड़ा ही प्रसिद्ध तप्त कुण्ड है। यह 'मनाली' से ढाई मील दूर समुद्री सतह से आठ हज़ार फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ सोतों से खौलता हुआ गर्म पानी निरन्तर निकलता रहता है। इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे यहाँ कोई छिपी हुई आग है, जो इसे सदा गर्म रखती है। इस कुण्ड को सत्रह सौ वर्ष पूर्व राजा तक्षपाल ने बनवाया था। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ वशिष्ठ मुनि ने तपस्या की थी जिससे इस कुण्ड को वशिष्ठ के गौरवशाली नाम से जोड़ दिया गया है। वशिष्ठ कुण्ड में गंधक बड़ी मात्रा में है। पास के गाँव वाले इसके पानी में स्नान भी करते हैं और कपड़े भी साफ करते हैं। इन दोनों कामों के लिये उन्हें साबुन की बिलकुल जरूरत नहीं पड़ती। गर्मी के महीनों में इसके खौलते जल का तापमान दो सौ तीस डिग्री फारेनहाइट से ऊपर पहुँच जाता है जबकि सर्दी में इसका तापमान केवल

इतना रह जाता है कि पानी स्नान करने योग्य गर्म रहे।

सोहना

पंजाब-स्थित सोहना का उष्ण स्रोत भी अपने प्राकृतिक चमत्कार के कारण समस्त देश में विख्यात है। यह वर्गाकार-सा है जिसकी लम्बाई चौड़ाई आठ-नौ फुट के लगभग है। यह अठारह फुट गहरा है। यहाँ पर मुख्य रूप से एक ही सोता है। स्नान आदि की सुविधा के लिये छः और कुण्ड, जिनमें दो स्त्रियों के लिए भी, बने हुए हैं। इन सभी में मुख्य स्रोत का जल पाइपों द्वारा लाया जाता है। सोहना का जल जितना लाभदायक है उतना स्वादिष्ट भी। इसमें गंधक के अतिरिक्त कैलशियम, सिक्का, लोहा, नमक आदि कई खनिज पदार्थ हैं। इसमें स्नान कर स्वास्थ्य-लाभ करने वालों का कहना है कि फोड़े-फुन्सियाँ, घावों, माँसपेशियों और हड्डियों के जोड़ों के दर्द आदि को ठीक करने में इसका जल अचूक है। सोहना दिल्ली के दक्षिण-पूर्व की ओर ३३ मील दूर दिल्ली-अलवर रोड पर 'अरावली' पर्वत के दामन में बसा हुआ एक छोटा-सा गाँव है।

यहाँ के बारे में एक लोक कथा भी प्रचलित है। बहुत समय पहले यहाँ पर कोई आबादी न थी। लिखि नाम का एक बंजारा नमक का व्यापार करता हुआ यहाँ आ पहुँचा। सूखे पर्वतों के कारण यहाँ पर कोई कुआँ, तालाब या झरना न था। गर्मी और प्यास के मारे उसका तथा उसके पशुओं का बुरा हाल था। बहुत खोज करने पर उसे पानी की एक बूंद भी न प्राप्त हो सकी। प्यास से थक-हार और लाचार होकर वह अचेत-सा एक पेड़ के नीचे जाकर लेट गया। वास्तव में प्रकृति की लीला विचित्र है! उस बँजारे के साथ एक कुत्ता भी था। भला वह कैसे अपने मालिक की यह दुर्दशा देख सकता था। उस सूखी धरती का चप्पा-चप्पा उसने खोजना शुरू किया और अन्त में वहाँ पहुँचा जहाँ पानी की एक पतली-सी धारा धरती में से फूट रही थी। बस फिर क्या था। पानी में नहा-धोकर दौड़ता हुआ वह झट से अपने मालिक को यह शुभ समाचार सुनाने के हेतु उसके पास आते ही ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा। व्यापारी बंजारा बुद्धिमान था ही, अपने प्राण-रक्षक कुत्ते को साथ लेकर वहाँ तक गया जहाँ आजकल सोहना का तप्त कुण्ड है। कहते हैं बाद में उसी

व्यापारी बंजारे ने अपने व्यापार की लाभ-राशि में से समाज-सेवा के विचार से इस सोते को साफ़ कराके इसके चारों ओर गुम्बद के आकार की एक ऊँची-सी दीवार बनवा दी जिससे इसका जल वर्षा और धूल से खराब न होने पाये।

दिल्ली में हजरत निजामुददीन की बावड़ी भी बड़ी अद्भुत है। इसमें नहाने से चर्म-रोग नष्ट हो जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि जिस स्थान पर यह बावड़ी है वहाँ कोई गन्धक का सोता है जिसका पानी चर्म-रोगों को ठीक करता है। इसका नाम 'चश्मये दिलकुशा' है।

भारत में हिमानी नदियों के साथ-साथ गन्धक के खौलते-से कुई गर्म कुण्ड बद्रीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री और गंगोत्री की यात्रा में देखने को मिलते हैं। ये संसार के अन्य शीत-प्रधान देशों में भी पाये जाते हैं। वैज्ञानिकों का भी यह मत है कि इससे निकलने वाले जल में अनेक रोग-नाशक तत्त्व होते हैं जिसके निरन्तर प्रयोग से चर्म-रोग नष्ट हो जाते हैं। कुछ ऐसे भी स्रोत हैं जिनका जल पेट के रोगों के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

शिवालक और अरावली की भाँति विन्ध्याचल और सतपुड़ा की विस्तृत पर्वतमालाओं में भी नाना प्रकार के झरनों से भरपूर प्रकृति-नटी ने अपना नाटक रचाया हुआ है। निरन्तर झर-झर करते हुए ये झरने यहाँ आने वाले दर्शकों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। उनमें से धुँआधार, कपिलधारा, चचाई प्रपात, कयोटी प्रपात, बहूति प्रपात, चित्रकूट प्रपात, सनकुवा प्रपात, पाण्डव प्रपात और जोग प्रपात बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

धुँआधार

धुँआधार 'जबलपुर' से तेरह मील दूर 'भेड़ाघाट' नामक गाँव के निकट है। यहाँ नर्मदा नदी बर्फ की तरह सफेद संगमरमर की चट्टानों से पचास फुट की ऊँचाई से गिर कर एक सुन्दर प्रपात का निर्माण करती है। सारे वातावरण में स्फटिक शिलाओं से टकराता हुआ जलकणों का एक रुपहला धुँआ-सा छा जाता है जिससे इसका यह अनूठा नाम ठीक ही रखा गया

है। चाँदनी रातों में इसकी चमकती हुई श्वेत जल-राशि में नौका-विहार का सुख-आनन्द लूटने के लिए देश भर के लोग दूर-दूर से यहाँ आते हैं।

कपिल धारा

नर्मदा नदी का उद्गम स्थान 'अमरकण्टक' है। वहाँ से तीन मील की दूरी पर 'कपिलधारा' प्रपात लगभग एक सौ फुट की ऊँचाई से गिरता हुआ अपने अतुल सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। गर्मी के दिनों में भी इसका जल हिम की भाँति शीतल रहता है। यहाँ पहुँचने के लिये रीवाँ से अमरकण्टक तक बसें चलती हैं। 'कपिलधारा' से कुछ ही दूरी पर नर्मदा एक दूसरे प्रपात का रूप धारण करती है जिसे 'दुग्ध-धारा' कहते हैं। यहाँ संगमरमर जैसे पाहन समूह पर गिरने वालीं धाराएँ दूध की तरह श्वेत लगती हैं।

चचाई प्रपात

चचाई प्रपात सचमुच प्रकृति-नटी का एक अनोखा चमत्कारिक अभिनय है। इसका निर्माण 'वीहर' नदी द्वारा हुआ है। यह नदी रीवाँ से तीस मील दूर ३७२ फुट की ऊँचाई से गिरकर इस अनुपम प्रपात को बनाती है। वर्षा ऋतु में यहाँ की शोभा कई गुना बढ़ जाती है। बघेलखंडी भाषा में इस तरह के प्रपात को 'कूँडा' नाम से सम्बोधित किया जाता है। चचाई प्रपात से तीन मील की दूरी पर 'टमस' नदी द्वारा 'पुरवा' प्रपात का निर्माण हुआ है। इसकी जलधारा चट्टानों से टकराती हुई लगभग दो सौ फुट की ऊँचाई से गिरती है। इसका नीला और सफेद गिरता हुआ जल बड़ा ही मनोहर लगता है।

कयोटी प्रपात

रीवाँ से २३ मील दूर 'कयोटी' या 'कवेटी' जल प्रपात यात्रियों के लिए एक विशेष आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ पर 'महाना' नदी ३३३ फुट की ऊँचाई से गिरकर कयोटी प्रपात बनाती है। नदी प्रपात के निकट कई धाराओं में बँटकर बहती है और फिर कुण्ड में गिरकर एक मुग्धकारी दृश्य

उपस्थित करती है। प्रपात के समीप पर्यटकों की सुख-सुविधा के लिए सरकार की ओर से एक विश्रामगृह भी बना हुआ है।

बहूति प्रपात

'अड्डा' नदी का बहूति प्रपात रीवाँ से ४८ मील दूर है। ४६५ फुट की ऊँचाई से गिरने वाला यह प्रपात विन्ध्य प्रदेश के सब जल-प्रपातों में से बड़ा है। इसकी विशेषता यह है कि दूसरे प्रपातों की भाँति इसकी जलधारा सीधे कुण्ड में न गिरकर चट्टानों से टकराकर सफेद मोतियों के पुंज बनाती हुई नीचे कुण्ड में जा गिरती है।

चित्रकूट प्रपात

चित्रकूट प्रपात मध्यप्रदेश के दक्षिण-पूर्व में 'जगदलपुर' से पच्चीस मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ इन्द्रावती' नदी प्रकृति की हरियाली में बहती चट्टानों से टकराती हुई ऊँचाई से गिरकर इस नयनाभिराम प्रपात का निर्माण करती है। इसकी निरन्तर कल-कल, छल-छल करती हुई जलधाराएँ यहाँ आए हुए दर्शकों को मानो यह सन्देश सुना रही हैं—"गति में जीवन है, माधुर्य है, शक्ति है!"

सनकुवा प्रपात

'दतिया' से चालीस मील दूर 'सेंवढ़ा' गाँव में सिन्धु नदी ने एक रम्य प्रपात बनाया है। यहाँ नदी की स्वच्छ-निर्मल जलधारा एक अथाह कुण्ड में गिरती है। सीढ़ी-नुमा पत्थरों पर गिरने वाला यह प्रपात अपने अनूठी सुषमा के लिए प्रसिद्ध है।

पाण्डव प्रपात

पाण्डव प्रपात 'पन्ना' से छः मील की दूरी पर स्थित है। इसका निर्माण वनस्थली के प्राङ्गण में पचास फुट की ऊँचाई से गिरकर हुआ है। इसके निकट पहाड़ी चट्टानों में बहुत-सी गुफाएँ तथा सीढ़ियाँ बनी

हुई हैं। यहाँ पहुँच कर दर्शक जड़ता को खोकर सुख-संतोष पाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने कुछ दिन के लिए यहाँ निवास किया था जिसके कारण इस प्रपात के साथ पाण्डवों का नाम जोड़ दिया गया है।

जोग प्रपात

मैसूर-स्थित जोग प्रपात अपने अनुपम सौन्दर्य से समस्त देश में विख्यात है। यहाँ 'सरस्वती' नदी का जल चार विशाल धाराओं में बँटकर लगभग ८३० फुट की ऊँचाई से गिरकर दिन की दोपहरी में इन्द्रधनुषी बाना धारण करता है और चाँदनी रात में अपने पीत आभास से एक अनोखे सुख की सृष्टि करता है। ९६० फुट की ऊँचाई से गिरने वाला मैसूर प्रदेश का 'गिरसप्पा' प्रपात संसार के सभी प्रपातों में से बड़ा है।
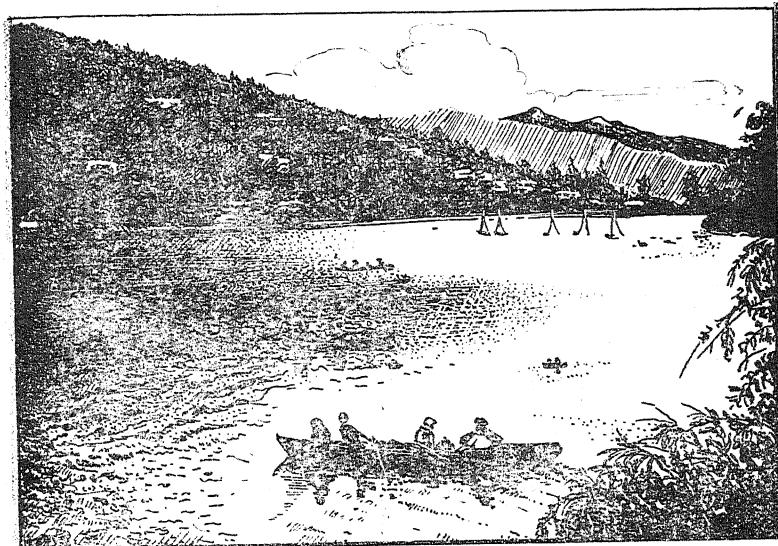
इसके अलावा हमारे देश में मध्य प्रदेश में पचमढ़ी का डचेस, पंजाब में काँगड़ा का झरना, बिहार-स्थित रांची में गौतमधारा और उत्तर प्रदेश में चकरौता का प्रपात आदि और कई प्रसिद्ध झरने हैं। परन्तु इन सब का यहाँ विवरण देना सम्भव नहीं है।

झरनों का प्रदेश

भारत के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा कश्मीर में सब से सुन्दर झरने हैं। यहाँ पर आकर जहाँ भी देखो, हर-हर, कल-कल, झर-झर करते हुए स्वच्छ-निर्मल जल के झरने आपके स्वागत में बहते-दौड़ते हुए दिखाई देंगे। यहाँ पर खेती-बाड़ी तथा बाग-बगीचों को पानी देने का काम भी इनसे ही लिया जाता है। इसी कारण से कश्मीर को झरनों का प्रदेश कहा जाता है। यहाँ के प्रसिद्ध झरनों में कुकरनाग, वेरीनाग, चश्माशाही, अनन्तनाग और अच्छाबल हैं।

कुकरनाग 'श्रीनगर' के पूर्व में ५१ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ ऊँची-नीची श्यामल पहाड़ियों में से कल-कल करते हुए नीले रंग के कई झरने बह रहे हैं। लोगों का विश्वास है कि इसके जल से पेट तथा फेफड़ों

के सब रोग दूर हो जाते हैं। दो-तीन सप्ताह यहाँ पर रहने से प्राय: रोगी ठीक हो जाते हैं। इसका जल पाचन शक्ति के लिए तो संजीवनी बूँटी है। वेरीनाग कश्मीर का सब से सुन्दर झरना है। यह 'पीरपंचाल' पर्वत के दामन में 'काज़ीकुण्ड' से दस मील की दूरी पर झेलम नदी का स्रोताशय है। इसका जल गहरा नीला है। इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे नीलाम्बर ही धरती पर उतर आया हो। चश्माशाही का जल बहुत ही मीठा है। इसका स्वादिष्ट जल जितना पिया जाय कम है। अनन्तनाग का मुख्य आकर्षण गन्धक के शीतल जल का एक सोता है। यह स्थान श्रीनगर से ३४ मील दूरी पर स्थित है। अनन्तनाग के दक्षिण-पूर्व में सात मील की दूरी पर 'अच्छाबल' का प्रसिद्ध झरना है। इसका जल पेट के रोगों के लिए रामबाण औषधि है। यहाँ पहाड़ी ढलान पर चश्मे का पानी कई स्थानों से फूटता-उछलता दिखाई देता है। एक जगह पर इसका छिद्र इतना बड़ा है कि आदमी तैरकर अन्दर जा सकता है।

नैनी झील की एक छवि

६

मनोरम झीलें

पर्वतरानी 'मसूरी' के झरनों की अपार सौन्दर्य सुषमा को निहारने के बाद कोलाहल भरी राजधानी दिल्ली को वापस लौट जाने से पूर्व एकाएक हमारे हृदय में झीलों की नगरी 'नैनीताल' को देखने की लालसा हो उठी और हम आठ दिसम्बर को मसूरी से 'देहरादून' तक मोटर में और वहां से रेल

द्वारा 'काठगोदाम' आ गये। काठगोदाम रेल का अन्तिम स्टेशन है। यह पहाड़ों के आँचल में समुद्र तल से १,६६१ फुट ऊँचा एक पहाड़ी गाँव है। यहाँ से 'नैनीताल' केवल २२ मील की दूरी पर है। काठगोदाम से 'राजकीय रोडवेज़' की बस में सवार होकर हम दो घन्टे के अन्दर-ही-अन्दर नैनीताल की नैनी झील के निकट आ पहुँचे।

कुमायूँ की झीलें

नैनीताल कुमायूँ की सबसे मनोरम झील है। तीन ओर बाँज के घने पेड़ों से आच्छादित गगनचुम्बी पहाड़ियों की तलहटी से मिली हुई यह झील समुद्र की सतह से ६३५० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। इसकी लम्बाई लगभग ४,५०० फुट, चौड़ाई १,५०० फुट और गहराई पचास से पाँच-सौ फुट तक है। रंग गहरा हरा है जिसमें पेड़ों की झूमती-इठलाती डालियों की छाया तथा क्षण-क्षण में बदलने वाले व्योम-मण्डल का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। सूर्योदय होते ही रात की ठंडक से जमे हुए इसके हिम-जल में किल्लोल करती बतखों के झुण्ड और बर्फीली हवा में परस्पर होड़ लेती हुई इसकी लहरों पर मटकती-तैरती बहुरंगी नावों को देखकर ऐसा लगता है जैसे यह कोई स्वर्गिक नगरी है। इस झील का वर्तमान अनूठा नाम नैनादेवी के मन्दिर से हुआ है जो झील के ऊपरी छोर पर खड़ा दिखाई देता है। नैनी झील के उत्तर में इसकी ओर तनिक सी झुकी 'चाइना पीक' की प्रसिद्ध चोटी है जिसकी ऊँचाई ८,५६० फुट है। इसे कुछ लोग 'नैना पीक' भी कहते हैं। चाइना पीक के चक्करदार मार्ग पर चढ़ते समय दर्शक थकान अनुभव करता है परन्तु चोटी तक पहुँचते ही महान् हिमालय की श्वेत बर्फ से ढकी लगभग एकसौ मील लम्बी शृंखलाओं के विराट् दृश्य का अवलोकन करते ही उसका मन आनन्द से झूम उठता है। ये शिखर नन्दादेवी, त्रिशूल, नन्दाकोट, बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि के हैं जो १०० से १५० मील को दूरी पर हैं। पर आँखें इतनी दूरी पर विश्वास नहीं करतीं। लगता है कि ये कोई दस-पन्द्रह मील से दूर न होंगे। प्रकृति के दर्शकों के लिए इतना मनोमुग्धकारी दृश्य बहुत कम स्थानों से देखने को मिलता है। चाइना पीक के पार्श्व भाग से नैनी झील को देखने पर सम्पूर्ण झील अपने सुबह को सफेद और दोपहर में हरा आवरण लेकर सोई-हुई-सी प्रतीत होती है। नैनीताल की खोज सबसे पहले सन् १८३९

में बैटन नाम के एक अंग्रेज़ शिकारी ने की थी जो हल्द्वानी से शिकार खेलने के लिए 'भीमताल' जाने के बाद घूमता-फिरता यहाँ आ पहुँचा था।

नैनीताल में नैनीझील के अलावा एक अन्य दर्शनीय झील है—खुरपाताल। नैनीताल से केवल तीन मील की दूरी पर ऊँची-नीची पहाड़ियों के प्रांगण में स्थित खुरपाताल झील हरित परिधान पहने सचमुच प्रकृति की एक सुन्दर कृति है। इसमें छोटी-छोटी मछलियाँ इतनी प्रचुर मात्रा में हैं कि कोई भी शौकीन व्यक्ति कांटे के बिना एक बड़े-से रूमाल की मदद से ही इनको पकड़ सकता है। खुरपाताल का दृश्य नैनीताल के पर्वत-शिखर 'लैण्डम एण्ड' से भी देखते बनता है।

'भीमताल' भी देखने योग्य स्थल है। यह जगह नैनीताल से ग्यारह मील की दूरी पर है जहाँ पर एक सुन्दर झील भी है। इसकी लम्बाई १,४६० फुट, चौड़ाई ५८० फुट और गहराई ६० फुट के लगभग है। जल कुछ नीला और कुछ हरा है। झील के मध्य में एक बड़ा-सा टापू बना हुआ है जहाँ पिकनिक करने के लिए बीस-पच्चीस परिवारों के लोग मजे से बैठ सकते हैं। इसका जल एक छोटी-सी नहर द्वारा 'हल्द्वानी' ले जाया गया है जिसे फिल्टर करके पीने के काम में लाया जाता। भीमताल का सम्बन्ध महाभारत के वीर योद्धा भीम से भी लगाया जाता है। नैनीताल की खोज से पूर्व परिमति की दृष्टि से यह सबसे बड़ी झील समझी जाती थी जिससे इसकी भीमाकार परिधि को देखकर लोगों ने इसका नाम 'भीमताल' रख दिया होगा।

भीमताल के निकट दो-तीन मील की दूरी पर तीन और भी झीलें—नौकुचिया ताल, सात ताल और नलदमयन्ती ताल हैं। नौकुचिया ताल नौ कोनों वाली एक विशाल झील है। इसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि यदि कोई व्यक्ति इसके नौ कोनों को एक साथ देख ले तो उसकी मृत्यु हो जाएगी। वास्तव में इस झील का जल पहाड़ियों की जड़ में अन्दर तक इस प्रकार फैला हुआ है कि दर्शक को उसके केवल सात ही कोने नज़र आते हैं। नौकुचिया ताल के पानी में किलोलें करती रंग बिरंगी मुर्गाबियाँ एक लुभावना दृश्य उपस्थित करती हैं। हरी पहाड़ियों की गोद में स्थित सात ताल के छोटे-छोटे सात तालाब और नलदमयन्ती ताल भी नैनीताल की दर्शनीय झीलें हैं।

वैज्ञानिकों के मत के अनुसार नैनीताल की ये झीलें उन ज्वालामुखियों के क्रेटर अर्थात् मुख हैं जो हज़ारों वर्ष पूर्व अपना ताण्डव-नृत्य करके आज शान्ति की नींद सो गये हैं। कालान्तर में इनके गढ़ों में पानी भर गया और धीरे-धीरे इन गढ़ों ने विशाल झीलों का रूप धारण कर लिया। इस सम्बन्ध में स्कन्दपुरायण में वर्णित एक किंवदन्ती इस प्रकार है—

हज़ारों वर्ष की बात है। तीन ऋषि घूमते-फिरते हुए नैनीताल के इलाके में तपस्या करने आये। यहाँ की प्राकृतिक शोभा को देखकर वे मुग्ध हो उठे। पानी के अभाव को देखकर उन्होंने पचास मील की परिधि की पहाड़ियों में सात अतल छिद्र किये जिससे इन झीलों का निर्माण हुआ। इसका उल्लेख १९०५ के 'कुमायूँ गजटियर' में भी हुआ है।

कुमायूँ की झीलों में नैनीताल की झीलों के अलावा रूपकुण्ड, मोहना झील तथा लोकपाल सरोवर भी बहुत ही प्रसिद्ध झीलें हैं।

रूपकुण्ड

उत्तर प्रदेश के 'चमोली' ज़िले में समुद्र के तल से सोलह हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित 'रूपकुण्ड' झील आज संसार भर के वैज्ञानिकों, नृवंश-शास्त्रियों, प्राणि-शास्त्रियों आदि के लिये मानवीय अवशेष के रहस्य का एक विषय बनी हुई है। पिछले कुछ वर्षों से यहाँ पर मनुष्यों के अस्थि-पंजर व बूट, चप्पल आदि यत्र-तत्र बिखरे पड़े मिले हैं जिससे इस झील को 'मृत्यु-कुण्ड के नाम से भी पुकारा जाने लगा है। आश्चर्य की बात यह है कि दो हज़ार वर्ग गज़ में फैली इस झील के जिस भाग में ये अस्थि-पंजर बिखरे पड़े मिले हैं, वह स्थान ग्लेशियर या हिमखण्डों के गिरने के भय से बहुत दूर और सुरक्षित है। इस झील के चारों ओर दीवार की तरह पहाड़ खड़े हैं जो केवल अस्सी से ढाई सौ फुट तक ऊँचे हैं। हाल ही में रूपकुण्ड के कुछ महत्त्वपूर्ण अवशेषों की एक प्रदर्शनी 'शिमला' में लगाई गई थी। इसमें भूगोलवेत्ता स्वामी प्रणवानन्द ने उस क्षेत्र में प्रचलित गीतों और कथाओं के आधार पर छः सौ वर्ष पुरानी कन्नोज के राजा यशधवल की होम-कुण्ड की रोमांचकारी यात्रा की पुष्टि की है। वह इस प्रकार है—

एक समय की बात है। नन्दादेवी (पार्वती) अपनी सखी-सहेलियों के साथ 'तालुरी बुग्याल' गई। यहाँ की भाषा में 'बुग्याल' वह मैदानी स्थान है जिसमें बर्फ का संचय केवल सर्दियों में ही रहता है और गर्मियों में इस स्थान का हिम पिघल जाता है और तब यह एक चरागाह-सा दिखाई देता है। तालुरी बुग्याल में पहुँच कर वहाँ पर सारा दिन खेल-कूद का कार्यक्रम चलता रहा। नृत्य करते समय उसके पावों का एक भूषण खो गया। उसकी खोज करते हुए नन्दादेवी की दृष्टि कन्नोज राज्य पर पड़ी। तुरन्त उड़न-खटोले पर बैठकर वह कन्नोज पहुँची। गढ़वाली राजा जसधौल (यशधवल) और रानी बल्लभा नन्दादेवी को देखकर घबड़ाए और पूछने लगे—"देवी, आपका यहाँ आना कैसे हुआ।"

देवी के राज्य माँगने पर राजा जसधौल ने उसे कुछ धन-सम्पत्ति और आभूषण ही लेने के लिए कहा। नन्दादेवी ने इसे अपना अपमान समझा और क्रोध से राजा जसधौल को शाप देकर वह कैलाश लौट गई। नन्दादेवी के लौटते ही सारे कन्नोज राज्य में अकाल पड़ने लगा। सभी ओर त्राहि-त्राहि मचने लगी। पके हुए चावलों में कीड़े पड़ने लगे, साग-सब्जी कड़वी होती गई, दही लाल होने लगा, मक्खन पर कुहरा जमने लगा, भैंस से बछिया, गाय से भैंसा जन्मने लगा, खेतों में फसल नष्ट हो गई, पानी सूख गया, जल सोतों से खून बहने लगा, पलंग पर मुलायम विस्तरे भी काँटे-से चुभने लगे। राजा चिन्तित होकर राज्य भर के पण्डितों और ज्योतिषियों के पास जाकर इसका कारण पूछने लगा। सभी ने बताया कि यह सब कुछ नन्दादेवी के श्राप का ही फल है। इसका एकमात्र उपाय यह है कि राजा और रानी स्वयं 'राजजात' की यात्रा करके नन्दादेवी से दोष-निवारण के लिए क्षमा-याचना करें। राजा ने राजधानी में पहुँचते ही रानी बल्लभा के हाथ पर राजजात मनौती रख दी। मनौती के रखते ही सारे राज्य में फिर से शान्ति का वातावरण छाने लगा। इसके साथ ही राजधानी में राजजात पर जाने के लिए तैयारियाँ भी होने लगीं। राजा अपने राज्य का कार्य-भार मन्त्री को सौंपकर रानी, बाल बच्चों और सेना सहित राजजात पर राजसी ठाठ-बाट के साथ रवाना हो गया। राजजात के नियम के अनुसार 'बांण' गाँव से आगे स्त्रियाँ, नौकर-चाकर और बाजे-गाजे नहीं जा सकते। पर राजा जसधौल राजजात की यात्रा के नियमों का उल्लंघन करके राजसी ठाठ-बाट के साथ बाँण गाँव से आगे बढ़ गया।

गर्भवती बल्लभा रानी के रूपकुण्ड के निकट पहुँचते ही एक कन्दरा में प्रसव हो गया जिससे राजा आगे न बढ़ सका और कन्दरा के चारों ओर दो-तीन सौ गज के समतल मैदान में अपने शिविर गाढ़ दिये। राजसी ठाठ-बाट के साथ राजा जसधौल और रानी बल्लभा को देखते ही नन्दादेवी ने कुपित होकर राजजात पर आये राजा, रानी और सैनिकों पर बर्फानी तूफान और मोटे-मोटे ओलों की इतनी भयंकर वृष्टि की जिससे राजा, रानी, नवजात शिशु, राजा के दो अन्य बच्चे तथा अनेक वीर सैनिक सदा के लिये मृत्यु की गोद में सो गये।

रूपकुण्ड के नामकरण के बारे की लोक कथा भी अनोखी है—

विवाह के पश्चात् जब शिव नन्दादेवी को साथ लेकर कैलाश लौट रहे थे तब मार्ग में 'कैलाश विनायक' से आगे एक स्थान पर नन्दादेवी को प्यास लगी। उसने शिव से पानी पीने के लिये कहा। थोड़ा-सा आगे चलने पर शिव को एक जगह पर पानी से भीगी हुई पृथ्वी का कुछ भाग दिखाई दिया। इसे देखते ही शिव ने इसमें अपना अस्त्र-शस्त्र-त्रिशूल को जा फेंका। त्रिशूल के लगते ही कुण्ड का उद्‌भव हो गया। नन्दादेवी ने उस कुण्ड में जाकर पानी पिया। पानी पीते समय नन्दादेवी को इसके स्फटिक से स्वच्छ-निर्मल जल में अपने शृङ्गारमय स्वरूप की छवि दिखाई दी जिससे प्रसन्न होकर उसने इस कुण्ड का नाम 'रूपकुण्ड' रख दिया।

इन कथाओं का जो भी सार हो पर यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि रूपकुण्ड मानवी अवशेष की संहारक दुर्घटना का एकमात्र कारण प्रकृति का प्रकोप ही हो सकता है। कुछ दिन पूर्व की बात है। दक्षिणी अमरीका के लीमापीरू के उत्तरी भाग में प्रकृति का एक ऐसा ही प्रकोप हुआ है जिसमें अधिक हिमपात के कारण एक विशाल पर्वत के टूटने से चार गाँव ध्वस्त हो गये और चार हज़ार व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। हज़ारों टन के हिमखण्ड और चट्टानखंड जंगलों का सफाया करते हुए गाँव तक पहुँच गए। कश्मीर-स्थित 'पहलगांव' में भी वृष्टिस्फोट की दुर्घटना प्रकृति की एक ऐसी ही विनाशकारी लीला थी।

गोहना झील या गोणताल चमोली से बारह मील दूर छः हज़ार फुट

की ऊँचाई पर स्थित है। इसे 'द्रुम' ताल या 'विरही' ताल भी कहते हैं। सन् १८९३ तक इस घाटी में कोई ताल नहीं था किन्तु भारी वर्षा के कारण द्रुमी गाँव के पार्श्व के पर्वत हट गये जिससे अलकनन्दा की सहायक नदी 'विरही' का पानी एक वर्ष तक रुक गया और विस्तृत तालाब बन गया। आज ढाई मील लम्बा और आधा मील चौड़ा यह ताल कुमायूँ का सबसे बड़ा सरोवर है।

लोकपाल सरोवर या हेमकुण्ड 'मयूंडार' ग्लेशियर के समीप एक छोटे से मैदान में है। इसके चारों ओर नैसर्गिक पुष्प-वाटिका विद्यमान है। इसका मार्ग 'पाडुंकेशर' के समीप से अलकनन्दा पार होकर जाता है। कहा जाता है कि दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने यहाँ तपस्या की थी। ऊँचाई १४,००० फुट है।

मानसरोवर

विश्व की सम्भवतः सबसे ऊँची विशाल झील तिब्बत-स्थित मानसरोवर है। इसकी ऊँचाई समुद्र की सतह से १४,९५० फुट है। इतनी ऊँचाई पर साठ-पैंसठ मील के घेरे की यह विशाल झील सचमुच ईश्वरीय कारीगरी का एक अनोखा प्राकृतिक चमत्कार है। इसकी परिक्रमा छः दिन में होती है। जल नीला है और एकदम परम स्वच्छ। तापमान हर समय शून्य तक रहता है परन्तु यहाँ का अलौकिक नैसर्गिक सौन्दर्य इस बात को भुलाए रखता है। हवा के थपेड़ों के कारण इसमें समुद्र की भाँति लहरें उठती रहती हैं। उन लहरों के साथ रंग-बिरंगे पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े किनारों पर आते रहते हैं। कुछ यात्री इन्हें सालिग्राम समझकर झोलियों में रख लेते हैं। झील में तैरते हुए हँसों की शोभा भी देखते ही बनती है। तीन बड़ी-बड़ी नदियाँ सतलज, सिन्धु और ब्रह्मपुत्र मानसरोवर के पास के स्रोतों से निकल कर लोक-कल्याण के लिये नीचे मैदानों में उतरती हैं।

मानसरोवर के निकट बाईं ओर एक और भी सरोवर है जो इससे भी बड़ा है। उसे 'राक्षस ताल' कहते हैं। मानसरोवर का किनारा तो सरलता से दिखाई दे जाता है परन्तु राक्षस ताल का ओर-छोर बिल्कुल नहीं दिखाई देता। दोनों विशाल सरोवरों को दाएँ-बाएँ इतने निकट देखकर समझने

में देर नहीं लगती कि हज़ारों वर्ष पूर्व यह दोनों अलग-अलग नहीं एक ही रहे होंगे और दोनों का ही नाम 'मानसरोवर' रहा होगा। नीले हिम-जल का कुदरती तालाब 'गौरीकुण्ड' भी यहाँ का एक अन्य दर्शनीय सरोवर है।

मानसरोवर की यात्रा का उक्त मौसम जून से सितम्बर के बीच का है। यहाँ जाने के लिए कई मार्ग हैं। पहला गंगोत्री के 'नीलड़' दर्रे से, दूसरा बद्रीनाथ के 'माना' या 'नीति' दर्रे से और तीसरा अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ के रास्ते 'लीपूलेख' दर्रे से होकर जाता है। इन सभी मार्गों में जो मार्ग लीपूलेख दर्रे से होकर जाता है वह सबसे निकट और सुगम है। अल्मोड़ा से कैलाश तक कोई ढाई सौ मील की दूरी को पैदल पार करना पड़ता है परन्तु अब पिथौरागढ़ के मार्ग से जाने में इसकी दूरी केवल दो सौ मील ही रह गई है।

हिमाचल की झीलें

हिमाचल प्रदेश की प्रमुख झीलों में खजियार, रेणुक और रेवलसर हैं। रेवलसर 'मण्डी' से पन्द्रह मील दूर हिन्दुओं, सिखों व बौद्धों के लिए एक समान पवित्र स्थान है। इसके बारे में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है—

ऋषि लोमस अपनी प्रेयसी से, जो मण्डी की राजकुमारी थी, कौवे के रूप में यहाँ पर आकर मिला करते थे। इसे देखकर मण्डी का राजा क्रुद्ध हो गया और उसने आज्ञा दी कि साधु को खौलते हुए तेल में फेंक दिया जाए। जैसे ही उसे तेल में फैंका गया, तेल पानी बन गया, जलती हुई लकड़ियाँ फल-फूल-पत्तियाँ हो गईं और ऋषि की आत्मा ने सात द्वीपों का रूप धारण कर लिया। इस कथा से प्रेरित होकर हर वर्ष हज़ारों यात्री दूर-दूर से वैशाखी के दिन यहाँ आते हैं।

दक्षिण भारत की झीलें

दक्षिण भारत की झीलों में 'कोडाइ कनाल' झील और 'ऊटी' झील प्रसिद्ध हैं। तमिल भाषा में 'कोडाइ' का अर्थ गर्मी और कनाल का अर्थ जंगल है। गर्मी की ऋतु में जब इसके चारों ओर हरियाली पीली पड़

जाती है तब भी यहाँ पर हरियाली अपनी पूर्ण छटा के साथ बनी रहती है। उटकमण्ड की ऊटी झील दो मील लम्बी है तथा इसमें नौका-विहार, मछली का शिकार आदि की समुचित व्यवस्था है।

मरुभूमि की झीलें

प्रकृति ने जहाँ एक ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों में हिम के निरन्तर पिघलते रहने से या फिर अधिक वर्षा के कारण गढ़ों को विशाल झीलों का रूप दिया है वहाँ दूसरी ओर उसने हिमालय और नीलगिरि के बीच मरुभूमि की शुष्क और पथरीली पहाड़ियों में वर्षा की बूँद-बूँद जल को कितनी सावधानी से एकत्र किया हुआ है, इसका पता राजस्थान की अनेक झीलों को देखकर लगता है। यहाँ पर दो प्रकार की झीलें हैं। एक खारे पानी की जैसे—साँभर और डिडवाना की झीलें, जिनसे नमक निकाल कर देश के अन्य भागों में भेजा जाता है। दूसरी मीठे पानी की जिसके जल को फिल्टर यानी छान-साफ करके पीने के लिए सप्लाई किया जाता है।

आबू की 'नक्की' झील राजस्थान की सबसे सुन्दर झील है। इसकी गहराई का निश्चित अन्दाज़ आजतक कोई नहीं लगा पाया। एक लोकोक्ति के अनुसार देवताओं ने इसे अपने नाखूनों से खोदा था जिससे इसका नाम 'नखी' पड़ा। कालान्तर में नखी शब्द 'नक्की' में बदल गया। नक्की झील अरावली पर्वतमाला में चार हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित है।

राजस्थान उदयपुर की झीलों के सौन्दर्य के लिये देश-विदेश में विख्यात है जिससे इसे 'झीलों का नगर' भी कहा जाता है। पिछोला की झील, राजसमन्द, जयसमन्द या ढेबर झील और फतहसागर यहाँ की दर्शनीय झीलें हैं। पिछोला झील चार वर्ग मील घेरे में फैली हुई है जिसमें जगह-जगह घाट, मन्दिर और महल बने हुए हैं। इस कृत्रिम झील का निर्माण चौदहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। इसके उत्तर में एक और कृत्रिम झील 'फतहसागर' है जिसे महाराणा फतहसिंह ने बनवाया था। तीन तरफ से पहाड़ियों से घिरी डेढ़ मील लम्बी और एक मील चौड़ी 'फतहसागर' झील की शोभा देखते ही बनती है। उदयपुर से बत्तीस मील दूर दक्षिण में बाँसवाड़ा-उदयपुर मार्ग पर महाराणा जयसिंह द्वारा निर्मित नौ मील

लम्बी और छः मील चौड़ी तथा कुल मिलाकर तीस वर्ग मील में फैली हुई विश्व की श्रेष्ठतम कृत्रिम झील जयसमन्द है। चारों ओर अरावली पर्वत की सुरम्य पहाड़ियों से घिरी हुई यह झील दर्शकों को सहज ही आकर्षित कर लेती है। झील से नहर निकाल कर खेती के लिए इसके पानी का उपयोग किया जाता है। प्रतिदिन टनों मछलियाँ पकड़ कर अन्य स्थानों को भेजी जाती हैं।

माउण्ट आबू और उदयपुर की झीलों के अतिरिक्त अजमेर का पुष्कर सरोवर, जोधपुर की बालसमन्द और सागरसमन्द तथा जयपुर की झीलें भी मरुभूमि की प्रसिद्ध झीलों में हैं।

कश्मीर की झीलें

हमारे देश में कश्मीर की झीलों का एक विशेष स्थान है। बर्फीली उपत्यकाओं में फैली हुई थल को जल बनाने वाली छोटी-बड़ी अनेक झीलें यहाँ चारों ओर देखने को मिलती हैं। आइये, हम आपको इनमें कुछ प्रमुख झीलों का दिग्दर्शन कराएँ।

कश्मीर की सबसे बड़ी झील 'वलर' झील है। यह न केवल कश्मीर में बल्कि सारे एशिया महादेश में मीठे पानी की सबसे बड़ी झील है। यह लगभग सोलह मील लम्बी और आठ मील चौड़ी है। मीलों-कोसों इसकी फैली जलराशि के कारण कुछ लोग इसे 'कश्मीर का समुद्र' भी कहते हैं। कश्मीरी भाषा में 'वलुर' का अर्थ छेद या सुराख है। शायद बहुत समय पहले अकस्मात् ही किसी दिन पृथ्वी में एक बड़ा-सा छेद हो जाने से इस झील का निर्माण हुआ होगा। वैसे वुलर झील का पुराना नाम 'महापद्म' भी है। इस झील में सुबह-शाम जब हवा धीरे धीरे चलती होती है तब घन्टों नाव में बैठे इसकी सैर करने में बड़ा आनन्द आता है। परन्तु दोपहर के समय इसकी यात्रा खतरे से खाली नहीं होती। यहाँ पर प्रायः दोपहर को आँधी-तूफान और ज्वार-भाटा आते रहते हैं। उस समय नाव में बैठे हुए लोगों का जीवन संकट में पड़ जाता है। किनारे पर खड़े होकर मज़े से देखने वाले दर्शकों के भी छक्के छूट जाते हैं तो फिर जो झील के बीच में नौका में सवार हों उन्हें कैसा लगता होगा! उनके लिये तो हर पल, हर

घड़ी डूबने का भय बना रहता है। वुलर झील जहाँ एक ओर इतनी भयंकर है वहाँ दूसरी ओर इसमें बहुत बड़ी मात्रा में सिंघाड़ा उगने और तरह-तरह की मछलियों को पकड़ने से कश्मीर सरकार को लाखों रुपयों की वार्षिक आय होती है। इसके अलावा झील में तैरते हुए राजहंस और जल-मुर्गियाँ इस झील के सौन्दर्य की श्रीवृद्धि करते हैं। वुलर झील श्रीनगर से तीस मील की दूरी पर 'बाँदीपुर' के निकट स्थित है।

वुलर झील के बाद श्रीनगर की 'डल' झील का नम्बर आता है। कश्मीर भाषा में 'डल' झील को ही कहते हैं। यह झील पाँच-छः मील लम्बी और दो ढाई मील चौड़ी है। अधिक शान्त होने के कारण इस झील में जगह-जगह पर पड़ाव डाले सैकड़ों हाऊसबोट और पानी पर तैरते हुए शिकारे यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। मुगलों के प्रसिद्ध बगीचे—निशात, शालीमार, नसीम और चश्माशाही इसी के किनारे पर बने हुए हैं। सर्दी के आरम्भ होते ही शीत से डल का पानी जमने लगता है और हिमपात के महीनों में तो पानी के अधिक जम जाने से इसमें एक विशाल स्केटिंग ग्राउण्ड-सी बन जाती है। तब कुछ साहसी लोग इस पर पैदल भी चलते हैं। कुछ वर्ष पहले की बात है जब एक अंग्रेज़ खिलाड़ी साइकिल पर सवार होकर जमी हुई इस झील में गया तब वह मुश्किल से ही पाँच-छः सौ गज़ की दूरी पर गया होगा कि झील में अचानक एक बड़ा-सा छेद हो गया जिसके कारण वह अंग्रेज़ खिलाड़ी झील के अन्दर पानी में जा गिरा और झील ने उसे सदा के लिये अपने उदर में ले लिया। कुछ ही मिनटों के बाद पानी की ऊपरी बर्फीली तह फिर से ज्यों-की-त्यों जम गई।
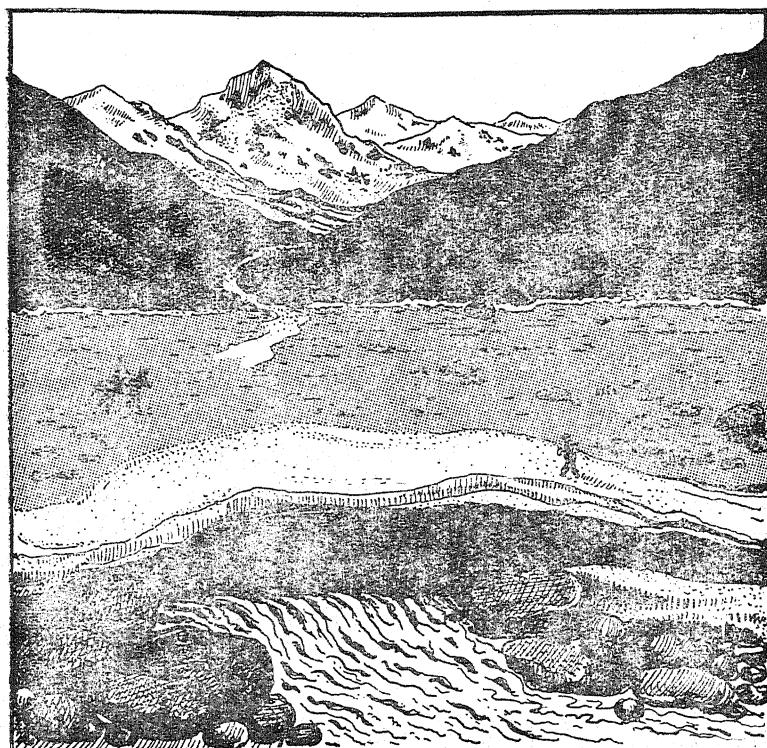
श्रीनगर में डल झील के निकट ही एक दूसरी झील 'नगीन' झील भी है। यह नगीने की भाँति सुन्दर है। इसमें जगह-जगह पर कमल के पौधे खिले रहते हैं। इनकी हरी-हरी गोलाकार पत्तियों पर पानी की छोटी-छोटी बूंदों के पड़ने से चाँदनी रातों में ऐसा लगता है जैसे इसमें चम्पा की फुलवाड़ी खिल आई है।

कश्मीर की सबसे सुन्दर झील 'शेषनाग' है। इसकी ऊँचाई बारह हज़ार फुट है जिससे यहाँ पर हरियाली पूर्णतः समाप्त है। चारों ओर बर्फ से ढकी पर्वत-चोटियाँ खड़ी हैं और उनकी तलहटी से लगी हुई एक मील

के घेरे की पन्ने की भाँति जगमगाती यह झील सचमुच प्रकृति का एक अद्भुत करिश्मा है। इसका जल ग्लेशियर से फिसलती-सरकती हुई बर्फ तथा धरती से फूटते सैकड़ों स्रोतों द्वारा एकत्रित होता है जो झेलम की सहायक नदी 'लिदर' का रूप धारण करके अठखेलियाँ करता हुआ 'पहलगाम' की ओर मंथर गति से बह रहा है। यहाँ पर यह विश्वास किया जाता है कि चारों ओर फैले काले साँपों के फन के समान पर्वत के आँचल में स्थित शेषनाग झील के नीले-हरे जल में विष्णु अनन्त शैया पर सोये हैं। 'शेषनाग' पहलगाम से सोलह मील की दूरी पर है और यात्री को वहाँ पैदल जाने में दो दिन लगते हैं।

कश्मीर की झीलों में वुलर, डल, नगीन और शेषनाग के अलावा कौंसरनाग, अल्पपत्थर, कातरनाग, कृष्णासर, विष्णुसर, जम्मू की मानसर और लद्दाख की पैंगोंगुर तथा स्पांगुर भी देखने योग्य झीलें हैं।

कुमायूं, हिमाचल, दक्षिणी भारत, मरुभूमि व कश्मीर की झीलों के अलावा हमारे देश में दार्जिलिंग की संचल लेक' पंजाब में चण्डीगढ़ की कृत्रिम झील 'सुखना सरोवर', मध्य प्रदेश में भोपाल की दो झीलें तथा मैसूर में बंगलौर की कृत्रिम झीलें 'चामसागर' और 'कृष्णराज सागर' की गिनती भी प्रसिद्ध झीलें में की जाती हैं।

चन्दनवाड़ी में बर्फ का प्राकृतिक पुल

८

बर्फ के पुल

कश्मीर की नयनाभिराम झीलों की तरह ही वहाँ के बर्फ के पुल भी दर्शनीय हैं। वहाँ का बर्फ का सबसे बड़ा पुल 'अमरनाथ घाटी' में है जिसकी लम्बाई कोई दो मील, चौड़ाई एक फर्लांग और मोटाई दस से पन्द्रह फुट तक है। इसके नीचे से 'अमरावती' नाम की एक हिमानी नदी बहती

है। 'कैलाश' और 'भैरव' हिम-मण्डित पर्वतों के बीच नदी पर स्वयं निर्मित बर्फ का यह पुल प्रकृति का एक अनोखा उपहार है। यहाँ पहुँचकर यात्री को संसार के रचना करने वाले कुशल कलाकार की अलौकिक-कला का साक्षात् दर्शन होता है।

बर्फ के ये पुल लोहे और लकड़ी के पुलों की भाँति ही मज़बूत होते हैं। इनकी बर्फ चट्टानों-सी ठोस होती हैं। ऊपर से ताज़ा गिरने वाली रुई-जैसी नर्म-नर्म बर्फ पड़ती रहती है जिसके कारण ही नीचे की जमी हुई बर्फ लोहे-जैसी कड़ी हो जाती है। ये पुल आसानी से टूटते नहीं। यात्रा के दिनों में सैकड़ों यात्री, बोझ से लदे टट्टू और पालकियों को उठाये पहाड़ी मज़दूर निर्भीक होकर इन पर से जाते हैं।

गर्मी के मौसम में हिम के निरन्तर पिघलने से इनमें कहीं-कहीं छोटे-छोटे छिद्र हो जाते हैं जिन्हें पार करते समय यात्री को बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ता है। यदि भूल से उसका पाँव छेद में पड़कर नीचे की ओर फिसल गया तो फिर खैर नहीं! झट से वह हिमानी नदी की तेज़ धारा में बहता हुआ किसी दूसरे ही लोक में पहुँच जायगा। पर मज़े की बात यह है कि अन्य पुलों के समान बर्फ के इन पुलों के नीचे कोई स्तम्भ नहीं होता। नीचे से नदी का जल बहता रहता है और ऊपर बर्फीली चट्टानों-से ठोस ये पुल अनादिकाल से खड़े हैं। गर्मी की ऋतु में जितनी बर्फ पिघल जाती है सम्भवतः उतनी ही या उससे कुछ अधिक-न्यून सर्दियों में फिर गिरकर जम जाती है।

कश्मीर में बर्फ के ऐसे अनूठे पुल एक-दो नहीं हैं, वे साढ़े नौ हज़ार से चौदह हज़ार फुट की ऊँचाई के बीच के अनेक स्थानों पर देखने को मिलते हैं। पहलगाम से नौ मील की दूरी पर 'चन्दनबाड़ी' के पार्श्व भाग में बर्फ का एक प्राकृतिक पुल है। यह तीन सौ फुट लम्बा और तीस फुट चौड़ा है। मोटाई पाँच-छः फुट के लगभग है। इसके नीचे से 'शेषनाग' नदी मंथर गति से बहती है। बर्फ के इस अनूठे पुल को देखने तथा 'पिकनिक' का आनन्द लेने के लिये यह रम्यस्थली बहुत ही उपयुक्त है। इसी कारण गर्मी के दिनों में यहाँ पर हर रोज पहलगाम से आये हुए प्रकृति के दर्शकों का मेला-सा लगा रहता है। यहाँ पहुँचकर कोई भी सहृदय व्यक्ति आकाश-

स्पर्शी शैल-शृङ्गों की भव्यता और चारों ओर फैली प्रगाढ़ शान्ति के वातावरण के बीच में प्रकृति की इस अनूठी देन को निहार कर अभिभूत हुए बिना रह नहीं सकता !

स्नोट्राऊट

हिमानी नदियाँ और बर्फीली झीलें सारे वर्ष स्नो-ट्राऊट और ट्राऊट जाति की मछलियों से भरी रहती हैं। यह खाने में अत्यधिक स्वादिष्ट होती हैं। ट्राऊट मछली कई आकार-प्रकार और रूप-रंग की होती है। कुछ छोटी होती हैं तो कुछ बड़ी भी। कुछ भूरे रंग की होती हैं तो कुछ इन्द्र-धनुषी रंग की भी। जितना ही छोटा जल-प्रवाह होगा उतनी ही छोटी मछली उसमें मिलेगी। बड़ी-बड़ी बर्फीली नदियों में तीन-तीन, चार-चार सेर तक की मछलियाँ मिलती हैं। परन्तु कभी-कभी छोटी-छोटी धाराओं में सेर-आध सेर की मछलियों का मिलना भी कठिन हो जाता है। स्नो-ट्राऊट और ट्राऊट एक तरह से विदेशी जाति की मछली है जो पहले-पहल सन् १९२० में योरुप से कश्मीर में लाई गई।

ऊँचाई पर स्थित बर्फीली झीलों में इसकी प्रचुरता है। कुछ वर्ष हुए एक शिकारी ने कश्मीर की एक प्रसिद्ध झील 'कृष्णासर' में चौदह पौंड की एक ट्राऊट मछली पकड़ी थी। आज तक का रिकार्ड है कि इस जाति की इतनी बड़ी मछली संसार के किसी भी अन्य देश में नहीं पकड़ी गई है। कश्मीर अब ट्राऊट मछली के शिकार के लिये संसार भर में विख्यात हो चुका है।

देश की स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से कश्मीर में सबसे ज्यादा मत्स्य पालन उद्योग में उन्नति हुई है। यहाँ चारों ओर फैली झीलों तथा नदी-नालों में मछली पालने का काम हो रहा है। द्वितीय पंचवर्षीय-योजना में यहाँ इसका लक्ष्य केवल दस लाख पौंड का ही था जब कि यह सरसठ लाख पौंड तक पकड़ी गई। कश्मीर के अलावा ट्राऊट मछली हिमाचल, कुमायूं और सिक्किम में भी मिलती है।

बर्फ से बनाया गया पुतला

६

हिम मूर्तियाँ

गिरिराज हिमालय में प्रकृति ने जहाँ हिमानी नदियों के ऊपर बर्फ के अनूठे पुल बनाये हैं वहाँ पर हिम-मण्डित पहाड़ों के अन्दर कई भव्य गुफाएँ भी बनाई हैं। इनमें से तीन तो देश भर में विख्यात हैं। पहली कश्मीर-

स्थित अमरनाथ गुफा, दूसरी जम्मू-स्थित वैष्णो देवी गुफा और तीसरी गढ़वाल-स्थित व्यास गुफा है।

अमरनाथ गुफा

अमरनाथ गुफा 'श्रीनगर' से नब्बे मील दूर समुद्र के तल से १२,७२६ फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है। यह पचास फुट लम्बी, पचपन फुट चौड़ी और पैंतीस फुट ऊँची है जिसके दोनों ओर 'कैलाश' और 'भैरव' पर्वत सिर उठाये खड़े हैं। हर पूर्णिमा को इसमें पर्वत के ऊपर से टपकने वाली हिम-बूँदों द्वारा शिवलिंग तैयार होता है और इसके पास ही पार्वती और गणेश की हिम-मूर्तियाँ भी बनती हैं। अमावस्या के दिन तो यहाँ एक ढेर-मात्र ही रह जाता है। अनन्त काल से यह मूर्तियाँ चाँदनी में बनती और अँधेरी रातों में पिघलती रहती हैं। आश्चर्य-जनक बात यह है कि आस-पास की सारी बर्फ पिघल जाती है, तब यह क्यों नहीं पिघलतीं ? इसे तो प्रकृति का करिश्मा ही मानना होगा ! प्रकृति के इस करिश्मे के दर्शनार्थ श्रावण की पूर्णिमा को अर्थात् रक्षा बन्धन के दिन हर वर्ष लगभग आठ-दस हज़ार यात्री दूर-दूर से यहाँ आते हैं। इनमें कुछ विदेशी भी होते हैं। श्रीनगर से पहलगाम तक मोटर-बस में और आगे की यात्रा पैदल करनी पड़ती है।

एक पौराणिक कथा के अनुसार इस कन्दरा में बैठकर शिव ने पार्वती को अमर कथा सुनाई थी और यह बताया था कि किस तरह उन्हें अमरत्व प्राप्त हुआ है। शिव ने कथा सुनानी आरम्भ की। कथा को सुनते-सुनते पार्वती को नींद आ गई और वह इस कथा को सुन नहीं सकी। शिव के आसन के नीचे एक शुक कथा को सुनता रहा। रसमग्न होकर शिव कथा को सुनाते रहे। अन्त में शिव ने पार्वती से पूछा—"कथा में तुम्हें आनन्द आया ?"

पार्वती ने बताया—"महाराज, मुझे तो नींद आ गई थी। अब आप फिर से कथा सुनाइये।"

तब शिव की दृष्टि अपने आसन के नीचे से गर्दन निकाले हुए शुक पर

गई। वह इस कथा के प्रताप से अमर हो चुका था और जल्दी से आकाश में उड़ गया। यह देखकर शिव उसका पीछा करने लगे पर शुक ने उन्हें बुरी तरह से थका दिया। उड़ते-उड़ते शुक एक नगरी से होकर गुजरा। वहाँ जमुहाई लेने के लिये मुनि व्यास की पत्नी ने मुख खोला ही था कि शुक उसके मुख के रास्ते से उसके पेट में उतर गया। शुक को मारने के लिये ब्रह्म-हत्या करने का महापाप होता। इस कारण शिव उसे वहीं छोड़कर कैलाश लौट गये। यही शुक जन्म लेकर मुनि शुकदेव कहलाया।

कश्मीर में पहलगाम जाते हुए मार्ग में 'बवन' से आधा मील दूर 'भौमजू' की गुफाएँ भी दर्शनीय हैं। इनमें सबसे बड़ी गुफा दो-सौ फुट तक लम्बी है।

वैष्णो देवी गुफा

वैष्णो देवी का पवित्र धाम जम्मू-तवी के पश्चिमोत्तर में चालीस मील दूर, 'त्रिकूट' पर्वत की गोद में ५,३०० फुट की ऊँचाई पर है। जम्मू से 'कटड़ा' तक पक्की सड़क बनी हुई है जो बीसवें मील पर जम्मू-श्रीनगर सड़क से अलग हो जाती है। कटड़ा से आगे का पर्वतीय मार्ग यात्री को अपने पैरों के बल पर अथवा टट्टू की पीठ पर सवार होकर तय करना पड़ता है।

यह गुफा सचमुच प्रकृति की विचित्रता का एक आभास मात्र है। इसकी लम्बाई एक सौ फुट के लगभग है। दूसरे छोर तक पहुँचने के लिए यात्रियों को टेढ़े-तिरछे और पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता है। अन्त में भगवती की तीन पिण्डियाँ—गायत्री, सरस्वती और महालक्ष्मी हैं। इन तीनों स्वरूपों का सम्मिलित एक नाम वैष्णो देवी है। यहाँ से पर्वत के अन्दर से निर्मल जल की एक मोटी-सी धारा निकलती है जिसे 'चरण गंगा' कहते हैं। त्रिकूट पर्वत के गर्भ में स्थित होने के कारण इस स्थली को 'त्रिकटा' भी कहते हैं। वैष्णो देवी की यात्रा मुख्य रूप से नवरात्रों (अक्तूबर) से दिसम्बर के अन्त तक रहती है। इसके दर्शनों के लिए हर वर्ष डेढ़-दो लाख यात्री यहाँ आते हैं। वैष्णो देवी के बारे में एक प्रसिद्ध लोक-कथा है—

वैष्णो देवी दक्षिणी भारत की एक ब्राह्मण राजकुमारी थी जो महाराज राम को वरने की इच्छा से कन्याकुमारी के निकटवर्ती वन में तपस्या करने लगी। बनवास के समय राम जब उधर से निकले तो उन्होंने उसे बताया कि वह विवाहित हैं और सीता उनकी सहचरी है। राम के उपदेश से प्रेरित होकर जब वह उत्तराखण्ड की ओर जा रही थी तब मार्ग में 'भैरव' नामक एक दानव से उसकी भेंट हुई। देवी के परम-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसने उसके सामने विवाह करने की इच्छा प्रकट की। देवी तीव्र घृणा से भर उठी और दानवराज भैरव के प्रस्ताव को ठुकरा दिया जिससे भैरव क्रुद्ध होकर उसका पीछा करने लगा। भैरव ने 'आदकुवारी' के स्थान पर देवी को घेर कर वेदी अर्थात् विवाह कुण्ड में बिठा लिया। यहाँ पर दस-बारह फुट लम्बी 'गर्भजून' नाम की एक विचित्र-सी कन्दरा है जिसकी विषम चट्टानों को चीरती-लाँघती हुई देवी भाग निकली और अन्त में अपनी पूरी शक्ति को बटोर कर त्रिशूल के प्रहार से दानवराज का शीश धड़ से अलग कर दिया। भैरव का धड़ पूर्ववत् देवी का पीछा करता हुआ गुफा के द्वारमुख तक आ पहुँचा जहाँ पर देवी ने शरण ली थी। कन्दरा के अन्दर जाते ही वैष्णो देवी ने अपने अन्तिम बाण से भैरव के धड़ को सदा के लिए शिला-भूत कर दिया। गुफा के बाहर जो बड़ा-सा पत्थर दिखाई देता है उसे भैरव के मृत धड़ का अवशेष ही बताया जाता है।

व्यास गुफा

व्यास गुफा हिमालय की सुरम्य उपत्यका में बद्रीनाथ से दो मील दूर, १०,२०० फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है। यह गुफा चारों ओर से भोजपत्र के पेड़ों से घिरी और ढकी हुई है। इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे यह विशाल चट्टान स्वयं प्रकृति देवी ने खोदकर बनवाई है। इसमें बैठकर ऋषि व्यास ने अमर वांङ्मय का निर्माण किया था। यहाँ पर आने के लिए उपयुक्त मौसम अप्रैल-मई तथा सितम्बर-अक्तूबर का है। ऋषिकेश से बद्रीनाथ की दूरी १६१ मील है।

सतपुड़ा की रानी 'पचमढ़ी' का नाम यहाँ की पाँच गुफाओं से ही पड़ा

लगता है। इसके बारे में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि बनवास के दिनों में पाण्डवों ने यहाँ एक वर्ष गुप्त रूप से प्रवास किया था। ऐसा कहा जाता है कि भीम ने यहीं कीचक का वध किया था। कुछ लोग इन गुफाओं को बौद्ध विहार मानते हैं। इनकी खोज सबसे पहले कैप्टन जे फोरसिथ ने की जो यक्ष्मा स्वस्थ केन्द्र की खोज करते हुए यहाँ आ पहुँचा था।

सांची में भी कुछ गुफाएँ हैं। वहाँ से चार मील की दूरी पर पश्चिम की ओर उदयगिरि में ये गुफायें विद्यमान हैं जिन्हें देखकर पर्यटक आवक् रह जाता है।

राजस्थान-स्थित 'माउण्ट आबू' की हरी-भरी पहाड़ियों के बीच भी कई अनोखी गुफाएँ और चट्टानें हैं। इनमें चम्पा गुफा, हाथी गुफा और रामझरोखा आदि प्रसिद्ध हैं। चट्टानों में टाड-राक और नन-राक देखने योग्य हैं। टाड-राक की आकृति मेंढक-जैसी और नन-राक घूँघट निकाली हुई युवती-जैसी लगती है। सन् १८६० में बिजली के गिरने से इसकी नाक का एक भाग टूट गया।

दैत्याकार चट्टान

कोटा से एक मील दूर एक दैत्याकार चट्टान चम्बल नदी के किनारे आश्चर्यजनक ढंग से झूल रही है। इसके पास खड़े होकर ऐसा लगता है कि यह चट्टान अभी हमारे देखते-ही-देखते गिरकर नदी के अथाह जल में डूबने ही वाली है। यह गजों लम्बी-चौड़ी, भारी-भरकम चट्टान बिना किसी दृढ़ आधार के नाम-मात्र के टिकाव पर सैकड़ों वर्षों से झूल रही है। इस प्रकार अनिश्चय की स्थिति में अधर झूलते रहने के कारण ही इसका नाम 'अधर शिला' पड़ गया है।

इस रहस्य गाथा के बारे में ऐसा प्रसिद्ध है कि किसी समय यहाँ पर एक पहुँचे हुए फकीर रहा करते थे। एक दिन जब वह अल्लाह ताला के ध्यान में लीन थे तभी एक बहुत बड़ा शिला-खंड आकाश में उड़ता हुआ

इस ओर आया। फकीर को यह समझने में देर नहीं लगी कि किसी दुष्टात्मा ने बस्ती को बरबाद करने के उद्देश्य से इस शिला-खण्ड को इस ओर उड़ाया है। जैसे ही वह शिला-खण्ड फकीर के सिर के ऊपर से गुजरने लगा, इस पवित्र आत्मा ने अपनी खुदाई शक्ति से उस चट्टान को बिना किसी सहारे के 'अधर' में टिका दिया। तभी से यह दैत्याकार शिला वैसी-की-वैसी वहाँ टिकी हुई है।

मसूरी का कैमल पर्वत भी प्रकृति की एक आकर्षक कृति है। इसकी लम्बाई कोई १५० फुट और ऊँचाई ८० फुट के लगभग है। इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे कोई भीमकाय ऊँट मरुभूमि से भागकर यहाँ आते ही अत्यधिक शीत के कारण जड़वत् हो गया है।

अल्मोड़ा-स्थित पिण्डारी ग्लेशियर में बर्फ की छोटी-छोटी कई गुफाएँ हैं। इनमें कुछ तो पन्द्रह-बीस गज तक लम्बी हैं। इन गुफाओं में से ही 'पिण्डारी' नदी का अद्भव होता है। यहाँ से दो मील नीचे घाटी में भी एक छोटी-सी गुफा है। ऐसा कहा जाता है कि भीम ने यहाँ बैठ कर चौबीस वर्ष तक कठोर तप किया था।

भारत में शिला-चित्रों की गुफाओं में 'अजन्ता' और 'एलोरा' तो विश्व विख्यात हैं। पन्ना और रीवां की विन्ध्याचल पर्वत-मालाओं में भी ऐसी ही छोटी-बड़ी चालीस से ऊपर गुफाएँ हैं जो पुरातत्वीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

बर्फ के पुतले

हिमपात के दिनों में मसूरी, शिमला, नैनीताल आदि हिम-नगरियों में पत्थर-मिट्टी की मूर्तियों की भाँति हिम-कलाकार बर्फ की कलात्मक प्रतिमाएँ (पुतले) बनाकर लोगों को अपनी अनूठी कला का परिचय देते हैं। बर्फ की इस मूर्ति को देखकर ऐसा लगता है जैसे वह मुखर है और अपना मौन आमन्त्रण देती दिखाई देती है। ताजा गिरने वाली बर्फ रुई

की तरह नर्म होती है जिससे इनके बनाने में कोई खास समय नहीं लगता। घन्टा आध-घन्टा में में ही धरती पर खड़ी हुई ये हिम मूर्तियाँ एकदम दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बन जाती हैं और लोग चारों ओर से इन्हें देखने के लिए इकटठे होने लगते हैं।

शिमला हिमनगरी की एक झाँकी

१०

हिम सुन्दरी

'मसूरी' और 'नैनीताल' की नैसर्गिक शोभा से आनन्दित होकर हमें दिल्ली में वापस आये तीन सप्ताह से भी अधिक समय बीत गया था। परन्तु न जाने क्यों बार-बार वहाँ की अलौकिक दृश्यावली मेरे नेत्रों के सामने साकार होकर कुछ क्षणों के लिये मुझे विभोर कर देती। एक दिन फिर

सुबह उठते ही पाँवों में खुजली-सी होने लगी और लगा कि इस बार भी मुझे किसी लम्बे सफ़र पर ही जाना होगा। उसी रात आकाशवाणी से 'शिमला में प्रथम हिमपात' के समाचार को सुनते ही मेरे मन में 'हिम सुन्दरी' को देखने की इच्छा तीव्र हो उठी और इस तरह दो दिन की आवश्यक तैयारी के बाद हमने पन्द्रह जनवरी की रात को मोटर-बस में बैठकर 'शिमला' के लिये प्रस्थान किया।

पंजोर उद्यान

हमारी बस रात भर दिल्ली से 'अम्बाला' तक ग्रेट ट्रङ्क रोड और वहाँ से चण्डीगढ़-कालका सड़क पर दौड़ती हुई पौ फटते-फटते सड़क के बाएँ ओर 'पंजोर' के मुग़ल-उद्यान के सामने जाकर कुछ देर के लिए रुक गई। पंजोर भारत के प्राचीन उद्यानों में एक है। इसका यह नामकरण पाण्डव काल के 'पंचपुर' का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है जिसका अर्थ है—पाँच पर्वतीय चोटियों का स्थल। ऐसा कहा जाता है कि विश्राम और बातचीत करने के लिए शिवालिक पर्वत की पाँचों शक्तियाँ—चण्डी, कालका, नैना, चिन्तपुरनी और ज्वाला माई यहाँ पर आकर मिला करती थीं। पाण्डवों को यह स्थल बहुत प्रिय था। वे यहाँ दो बार आए थे, एक बार अपने अज्ञातकाल में घूमते-फिरते हुए और दूसरी बार स्वर्गारोहण पर जाने से पहले। मुग़लकाल में औरंगज़ेब का एक जनरल और पंजाब का सूबेदार फिदायेखान एक बार घूमता हुआ यहाँ आ पहुँचा। इस जगह की प्राकृतिक छटा से प्रभावित होकर उसने अपना डेरा यहीं डाल दिया। मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ और जहाँगीर की तरह वह भी बाग-बगीचों का परम-प्रेमी था। आते ही उसने यहाँ पर नई-नई क्यारियाँ, पेड़-पौधे, फव्वारे, फर्श, चबूतरे आदि बनवाये। कुछ समय के बाद इस स्थली को नये सिरे से सँवारने-सजाने का काम महाराजा पटियाला ने किया। आज का प्रसिद्ध 'पंजोर मुग़ल बाग' उसी का ही निखरा हुआ स्वरूप है। पटियाला राज्य के पंजाब में मिल जाने पर पिछले कुछ वर्षों से इसे जन-साधारण के लिये खोल दिया है।

बाग के चारों ओर दस-बारह फुट ऊँची सीधी-सादी और मटमैली चार-दिवारी है जिसके बीच में आने-जाने के लिए एक छोटा-सा दरवाज़ा

बना हुआ है। बाहर से देखकर यह अनुमान लगाया ही नहीं जा सकता कि इसके अन्दर कश्मीर के निशात और शालीमार, दिल्ली के राष्ट्रपति भवन का मुगल उद्यान और मैसूर के वृन्दावन बाग से होड़ लेने वाला पंजोर का यह अनूठा उद्यान इस प्रकार से छिपा हुआ है जैसे किसी खान में हीरा। इसमें टहलने के लिए बीचों-बीच स्लेटी पत्थर का रास्ता बना हुआ है जिसके दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़े सरू और ताड़ के पेड़, हरी-हरी घास के छोटे-छोटे लॉन, चलते फव्वारे और क्यारियों में शोभायमान लाल-गुलाबी-पीले रंग के गुलाब के फूल हैं। कहते हैं सरू और गुलाब कई सौ वर्ष पहले ईरान से भारत में लाये गये थे। उद्यान में फूलों की शोभा के साथ-साथ लीची, आम, लुकाट और चीकू के फलों वाले सैकड़ों पेड़ों ने इसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा रखे हैं। रविवार को तो यहाँ 'पिकनिक' के लिए दूर-दूर से आए स्कूल-कालेज के छात्र-छात्राओं तथा उद्यान-प्रेमी दर्शकों का एक मेला-सा लगा रहता है।

पर्वतीय पेड़

'पंजोर' से चलकर हम दस मिनट के अन्दर-ही-अन्दर 'कालका' जा पहुँचे। कालका वह अन्तिम स्टेशन है, जहाँ से शिमला तक छोटी लाइन चलती है। छोटे-छोटे रेल के डिब्बे और उनके आगे छोटा-सा इंजन कछुए की तरह लगा होता है। सामान अलग और यात्री अलग डिब्बों में होते हैं। हम भी शिमला जाने वाली इस छोटी-सी रेलगाड़ी में बैठ गये। कालका के आगे पर्वतीय चढ़ाई शुरू हो गई और चढ़ाई के साथ-साथ हरियाली भी बढ़ती जा रही थी। पहले कुछ कँटीले झाड़-झंखाड़ थे और फिर 'धर्मपुर' तक पहुँचते-पहुँचते चीड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ सभी ओर दिखाई देने लगे। पर्वतों के शिखरों पर, खाइयों में तथा लाइन के दोनों ओर चीड़ ही चीड़ के घने पेड़ थे। चीड़ का पेड़ मैदानी पेड़ों से एकदम अलग-सा है। इसकी पत्तियाँ नुकीली और सुई-जैसी होती हैं। यह चोटियों और ढलानों में प्रहरी की तरह खड़ा आकाश से छूता हुआ दिखाई देता है। चीड़ पहाड़ों में चार-पाँच हज़ार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह बड़ा ही लाभदायक पेड़ है पर इसका सबसे बड़ा लाभ इसकी वायु से है जो टी० बी० के रोगियों के लिए बहुत ही मुफ़ीद है। हमारे देश के सभी उत्तम सैनिटोरियम—जैसे कश्मीर का बटोत और टनमर्ग, हिमाचल का कसौली और

धर्मपुर तथा कुमायूँ का भुवाली चीड़ के घने जंगलों के बीच में ही बने हुए हैं।

ऊँचाई पर जलवायु की तरह पेड़ों पर भी प्रभाव पड़ता है। चीड़ के बाद की ऊँचाई पर बाँज, कैल, देवदार और भोजपत्र के पेड़ मिलते हैं। बाँज को 'बान' भी कहते हैं। नेपाली भाषा में इसे 'बंजराड' कहा जाता है। बाँज का पेड़ बड़ा ही घना होता है। इसके जंगलों में भालू, तेंदुआ, लकड़बग्घा तथा जंगली बकरे व हिरन भी पाये जाते हैं।

देवदार को संस्कृत में 'देवदारु' कहते हैं जिसका अर्थ है देवताओं का पेड़। देवदार सचमुच प्रकृति का सबसे सुन्दर पेड़ है। यह वृक्ष जनवरी-फरवरी के महीने में भी जब सख्त सर्दी पड़ती और बर्फ का तूफान आता है तब भी हरा-भरा रहता है। सरु की भाँति ऊँचा, बहुत ही ऊँचा उठता है। कोई-कोई पेड़ तो डेढ़-सौ से दो-सौ फुट तक ऊँचा देखा गया है। इसकी हरी-हरी टहनियाँ इधर-उधर फैली और ऊपर को उठी हुई बहुत ही भली मालूम देती हैं। कैल और देवदार एक ही जाति के पेड़ हैं। कैल के तने का घेरा देवदार से कुछ बड़ा होता है। देवदार की ऊँचाई के बाद भोज-पत्र के पेड़ मिलते हैं। इसके पत्ते बड़े-बड़े और कागज़ की भाँति मुलायम होते हैं। कागज के युग से पहले लोग लिखने के लिए इसी का ही प्रयोग करते थे। आज भी इस पर लिखे हुए प्राचीन समय के अनेक लेख, ग्रन्थ आदि मिलते हैं। भोजपत्र की तहें लोग अपने घरों की छतों पर डालते हैं क्योंकि यह जल्दी गलता नहीं। भोजपत्र दस-बारह हज़ार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

हिम नगरी

कालका से चलकर सायंकाल तक हम शिमला में आ गये। शिमला हिमाचल प्रदेश के हिम-शृङ्गों पर बसी स्वर्ग-सी सुन्दर नगरी अपनी अमर एवं अतुल सुषमा से देश भर के सैलानी लोगों तथा घुमक्कड़ों के लिए प्रमुख आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। ग्रीष्म ऋतु में तो यह एक रमणीय स्थली है ही, जिसकी शीतल एवं सुगन्धित वायु मैदानों से आये लू और गर्मी के मारे, थके-हारे लोगों को फिर से नूतन शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करती है। परन्तु शिशिर के अत्यधिक ठंडे मौसम में दूध-जैसे श्वेत परिधान

पहने इस हिम सुन्दरी की स्वर्गिक सौन्दर्य-छटा को जो कोई भी एक बार देख लेता है उस पर इसकी अमिट छाप पड़ जाती है। यह अत्यन्त ही मनोरम एवं नयनाभिराम है। पर्वतों के प्राङ्गण में सुविधा के अनुकूल आधुनिक ढंग के सैकड़ों मनभावन बँगले, सुन्दर होटल व सरकारी दफ्तर खड़े हैं। इनके कमरे बहुधा काठ व शीशे के हैं और छतें टीन की, जो नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं। इससे वर्षा तथा हिम पिघल कर स्वयं नीचे गिर जाता है। सर्दी के मौसम में बन्दूक के छर्रों के समान छोटे-छोटे ओलों की भरमार अथवा हिम की फुहार छतों पर पड़ने लगती है तब ऐसा लगता है मानो कोई स्वर्ग-सुन्दरी अलौकिक सितार के तार बड़ी तीव्रता से छेड़ रही है।

शिमला में हिमपात का मौसम दिसम्बर के अन्त से मार्च के बीच तक बना रहता है। दिसम्बर के शुरू होते ही कुहरा और बादल ढलानों में तथा चोटियों पर मँडराते रहते हैं। ठंडी हवाएँ चलने लगती हैं और जब कोई बर्फीला झोंका शरीर के किसी अंग से छू जाता है तो ऐसा लगता है जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। बाज़ारों और दूकानों पर चहल-पहल कम होने लगती है। सारे वातावरण में एक अनोखा-सा सन्नाटा छाया रहता है। शिमला की साहबी नगरी एक प्रकार से सूनी पड़ जाती है। तापमान गिरता रहता है। धीरे-धीरे चारों ओर से घुमड़-घुमड़ कर बादल के टुकड़े अपनी हिम-सुन्दरी को रिझाने के लिये निरन्तर तत्पर रहते हैं। जब मेघ-राज का मन अपनी मतवाली सुन्दरी को भरपूर शृङ्गार करने के लिये मचल उठता है तब शिमला के व्योम-मंडल में एक विस्तृत सफेदी-सी छा जाती है। सारा वातावरण एक मोहक स्निग्धता में डूब जाता है। चारों ओर शान्ति विराजती है। यही हिम-सुन्दरी की प्रिय निस्तब्धता है और शान्ति है जो भीड़-भाड़ से मुक्त गर्मियों के पश्चात्, अत्यधिक सलोनी और मनोरम प्रतीत होती है।

कई लोगों का ऐसा विचार है कि बर्फ एक मुसीबत है, क्योंकि इसमें कहीं आना-जाना कठिन हो जाता है। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। ज़रा किसी शिमला निवासी से तो पूछिये, उनके लिए तो यह कठिनाई की जगह एक प्रसन्नता की चीज़ है। हिमपात होते स्त्री, पुरुष और बच्चे बरसाती पहने, रंग-बिरंगे छाता उठाये तथा युवतियाँ सिर पर रंगीन रूमाल बाँधे

अपने-अपने घरों से बाहर आ कर प्रकृति की छटा का आनन्द लूटते हैं। सर्दी के मारे लिहाफ में पड़े रहने वाले मैदान के लोग शिमला में बर्फ की सुन्दरता की कल्पना कर ही नहीं सकते। इसका आनन्द तो स्वयं अपने नेत्रों से देखकर ही लिया जा सकता है। हिमपात में घूमने-फिरने से वर्षा की तरह कपड़े, कोट आदि खराब नहीं होते हैं बल्कि ज़रा-सा झाड़-पोंछ देने से वैसे-के-वैसे सूखे लगते हैं।

नगरी का इतिहास

शिमला को बने लगभग एक सौ तीस वर्ष हुए हैं। पहले इस हिम-नगरी का कुछ भाग तो पटियाला के महाराजा और कुछ कैनथल (जुंगा) के राणा के आधिपत्य में था। सन् १८०४ से गोरखा सैनिकों ने समय-समय पर यहाँ छोटे-मोटे आक्रमण करने आरम्भ कर दिये थे और ये आक्रमण दस वर्ष तक चलते रहे। शिमला के सरदारों के निमन्त्रण पर जाँन कम्पनी के अंग्रेज अधिकारियों का ध्यान सन् १८१४ में ही इस सुषमा-स्थली की ओर आकर्षित हुआ। यह जगह पहले-पहल अस्वस्थ सैनिकों के लिए बनाई गई थी, पर धीरे-धीरे शिमला, पंजाब और केन्द्रीय सरकार की पर्वतीय ग्रीष्मावास बनकर साहबी तथा सरकारी नगरी कहलाने लगी। यद्यपि चण्डीगढ़ पंजाब की राजधानी बन गई है तो भी यह आज पश्चिमी कमान का मुख्यालय और हिमाचल प्रदेश की राजधानी है।

समतल मैदान

यहाँ की सबसे आकर्षक जगह लाला लाजपतराय चौक और 'रिज' का मैदान है। समुद्र की सतह से ७,०८४ फुट की ऊँचाई पर सीमेंट का बना लगभग १५० फुट लम्बा और ७५ फुट चौड़ा रिज का यह समतल मैदान देखने में बहुत ही सुन्दर लगता है। इसके नीचे पानी के बड़े-बड़े जलाशय हैं जहाँ से सारे शिमला नगरी को पानी सप्लाई होता है। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के प्राङ्गण में स्थित यह मैदान एक हवाई अड्डे की तरह प्रतीत होता है। इसकी पृष्ठ-भूमि में सिर उठाये धरातल से ८०० फुट ऊँचा 'जाखू' का हिममंडित पर्वत-शिखर खड़ा है। जिस दिन ताज़ा हिमपात हुआ हो उस दिन रिज के मैदान के सौन्दर्य में चार चाँद लग जाते हैं। चारों ओर चाँदी

की तरह सफेद चमकीली बर्फ दूर-दूर तक फैली हुई दिखाई देती है। प्रकृति रानी की इस लुभावनी-मनभावनी सौन्दर्य-छटा के विराट् दर्शन करने के लिए लोग अपने-अपने घरों से निकल कर 'रिज' के खुले समतल मैदान में एकत्र होने लगते हैं। इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे यहाँ कोई मेला जुड़ रहा हो।

रिज के समतल मैदान में पहुँचकर कुछ मनचले युवक-युवतियाँ बर्फ के मोटे-मोटे गोले बनाकर एक-दूसरे पर मारते-फेंकते हैं। इससे कोई विशेष चोट नहीं लगती, क्योंकि ताज़ा बर्फ रुई की तरह नर्म और हल्की होती है। गर्मियों के दिनों में जिस बर्फ को हम पानी में मिलाकर पीते हैं उसकी भाँति यह सख्त और भारी नहीं होती।

अनाडेल का पठार

रिज से लगभग एक मील की दूरी पर पर्वतों की तलहटी में एक गोलाकार समतल पठार है। इसकी लम्बाई तथा चौड़ाई आध मील के लगभग होगी। शीत ऋतु के आरम्भ होते ही सूर्योदय से पूर्व इसका सारा-का-सारा पठार कुहरे और हिमकण से बिलकुल श्वेत हो जाता है। इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रकृति-नटी ने इसकी हरी घास पर धुली हुई एक विशाल सफेद चादर बिछा दी हो।

हिमनगरी की रात

शिमला रात्रि को देखते ही बनता है। चाँदनी रातों में चन्द्रमा नभ-मण्डल से उतर कर देवदार वृक्षों के झुरमटों में लुकता-छिपता सितारों के साथ आँख-मिचौली खेलता है। परन्तु अँधेरी रातों में इस हिमनगरी के सैकड़ों रंग-बिरंगे बिजली के बल्ब उत्तुंग पेड़ों के बीच पर्वत-शृङ्गों पर इस प्रकार झिलमिल करते हैं मानो सितारे ही नभ-मण्डल से उतर कर इसे प्रभापुंज स्वर्गखण्ड बना रहे हों।

सितारों की स्वर्गिक क्रीड़ाओं की ओर निहारते हुए शिमला में एक

रात को सहसा सुकवि श्री जीवन प्रकाश जोशी का यह गीत हमारे अधरों से बरबस फूट निकला :—

"तारे मुझे बुलाते हैं।
जब पलके पर मैं सोता हूँ,
दिन के सब झगड़े खोता हूँ,
टिम-टिमकर अपने आँगन में तारे मुझे बुलाते हैं।
नीला अम्बर इनका घर है,
हीरे जैसा मुख सुन्दर है,
झाँक-झाँक मेरी आँखों में मुझको बड़ा रिझाते हैं।
तारे मुझे बुलाते हैं।
निंदिया रानी जब आ जाती,
मेरी पलकों पर छा जाती,
तब ये सपनों में हिल-मिलकर झूला मुझे झुलाते हैं।
तारे मुझे बुलाते हैं।
मैं भी एक तारा बन जाऊँ,
इनकी दुनियाँ में खो जाऊँ,
रोज रात को मधुर भाव ये पागल मुझे बनाते हैं।
तारे मुझे बुलाते हैं।"

नारकंडा में हिम-सुषमा

११

बर्फ की बहार

हिम सुन्दरी शिमला में आये हुए घुमक्कड़ों और हिम के दर्शकों के लिए हिम-किरीटिनी चोटियों से शोभायमान 'नारकंडा' एक अति सुन्दर स्थान है। यह जगह हिमाचल प्रदेश के महासू ज़िले में हिन्द-तिब्बत रोड पर स्थित है। नारकंडा 'नागकंडा' का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है जो

रात को सहसा सुकवि श्री जीवन प्रकाश जोशी का यह गीत हमारे अधरों से बरबस फूट निकला :—

"तारे मुझे बुलाते हैं।
जब पलके पर मैं सोता हूँ,
दिन के सब झगड़े खोता हूँ,
टिम-टिमकर अपने आँगन में तारे मुझे बुलाते हैं।
नीला अम्बर इनका घर है,
हीरे जैसा मुख सुन्दर है,
झाँक-झाँक मेरी आँखों में मुझको बड़ा रिझाते हैं।
तारे मुझे बुलाते हैं।
निंदिया रानी जब आ जाती,
मेरी पलकों पर छा जाती,
तब ये सपनों में हिल-मिलकर झूला मुझे झुलाते हैं।
तारे मुझे बुलाते हैं।
मैं भी एक तारा बन जाऊँ,
इनकी दुनियाँ में खो जाऊँ,
रोज रात को मधुर भाव ये पागल मुझे बनाते हैं।
तारे मुझे बुलाते हैं।"

नारकंडा में हिम-सुषमा

११

बर्फ की बहार

हिम सुन्दरी शिमला में आये हुए घुमक्कड़ों और हिम के दर्शकों के लिए हिम-किरीटिनी चोटियों से शोभायमान 'नारकंडा' एक अति सुन्दर स्थान है। यह जगह हिमाचल प्रदेश के महासू ज़िले में हिन्द-तिब्बत रोड पर स्थित है। नारकंडा 'नागकंडा' का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है जो

किसी समय नाग देवता की पूजा के लिए प्रसिद्ध था। 'कंडा' पर्वत के पार्श्व भाग को कहते हैं। शिमला से नारकंडा की दूरी केवल चालीस मील है जहाँ पहुँचकर आदमी मैदान को भूलने लगता है।

हिन्द-तिब्बत रोड पर

नारकंडा में हिमसुषमा को निकट से निहारने के लिए बीस जनवरी की सुबह को हमने आठ बजे के लगभग शिमला से एक मोटर-जीप में सवार होकर प्रस्थान किया। चलते समय मौसम बड़ा ही अच्छा था। सूर्य पूरी तरह से चमक रहा था और उसके प्रकाश में चारों ओर दूर-दूर तक सब कुछ दिखाई दे रहा था। शिमला से चलकर हम 'संजोली' आ गए। यह 'जाखू' पर्वत के पृष्ट में बसा हुआ एक पहाड़ी स्थान है। शिमला के निकट होने के कारण इसे भी नगरों जैसी सभी सुख-सुविधाएं प्राप्त हैं। इसके कुछ ही आगे लगभग एक सौ फुट लम्बी सुरंग है जिसमें से होकर हम 'डल्ली' पहुँचे। डल्ली 'तत्तापानी' और 'नारकंडा' जाने वाली सड़कों पर एक छोटा-सा गांव है। यहां पर हिमाचल प्रदेश का एक परिवहन वर्कशाप भी है।

शिमला से डल्ली तक का रास्ता लगभग समतल है। आगे का मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा और चढ़ाई का है। यहाँ की सड़कें मैदानी सड़कों से भिन्न हैं जो पहाड़ों की छाती पर नागिन की तरह बलखाती हुई दूर तक चली गई हैं। इसके एक ओर पाताल को छूती खाइयाँ हैं तो दूसरी ओर आकाश से बातें करती हुई चोटियाँ। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पहाड़ों के पेचदार मोड़ और घुमावदार चक्कर हैं। ऊँचाई पर हिमाचल की विशाल वन्य शोभा हमारे नेत्रों के सामने उमड़ती चली जा रही थी। घाटियों में दूर-दूर तक देवदार, कैल व चीड़ की हरी-हरी वृक्षावली देखने में बहुत ही सुन्दर लग रही थी। चढ़ाई पर चढ़ते हुए खिड़की से झाँक कर हम जब कभी खाई की ओर देखते तो एकदम ऐसा लगता जैसे हम गगनलोक से भूलोक का दृश्य देख रहे हैं। आध घन्टा के अन्दर-ही-अन्दर हम 'छराबड़ा' में आ गए। यहाँ का मुख्य आकर्षण एक 'बेसिक कृषि स्कूल' है। अंग्रेजों के समय में यहाँ पर 'वाइलड फलावर हाल' नाम का एक बढ़िया होटल था जिसे अब हिमाचल सरकार ने कृषि स्कूल में बदल दिया है। यह स्थली विशेषतः नाना

प्रकार के जंगली फूलों की रंगीनी के लिए प्रसिद्ध है। छराबड़ा से 'कुफ़री' तक का रास्ता फिर कुछ सपाट-सा है। कुफ़री में सड़क के दोनों ओर बनी पुराने ढंग की टीन के छप्पड़ों वाली बीस-पच्चीस दुकानें हैं। यहाँ से चिनी बंगला जिसकी बर्फीली ढलानों पर स्कींग करने के लिए खिलाड़ी दूर-दूर से आते हैं केवल एक ही मील दूर है। वहाँ से एक मार्ग 'चैल' को सीधा चला जाता है। कुफ़री से आगे नारकंडा तक 'फागू', 'थ्योग' और 'मत्याना' देखने योग्य स्थान हैं। फागू और मत्याना दोनों ही छोटे-से पहाड़ी गांव हैं पर थ्योग तो एक बड़ा-सा पहाड़ी कस्वा है जिसकी आवादी आठ-दस हज़ार के लगभग है। यहाँ पर हिमाचल सरकार के कुछ कार्यालय भी हैं।

अद्भुत हिमपात

ऊंचाई पर मौसम जल्ली-जल्दी बदलता रहता है। पहले धूप थी और मौसम बड़ा सुहावना था। सर्दी के साथ धूप का बहुत ही सुन्दर मेल बना हुआ था। कुफ़री से आगे जाते हुए रास्ते में घाटियों में से कुहरा धीरे-धीरे उठने लगा। हमारे देखते-देखते घाटियों से चोटियों तक की सम्पूर्ण वनस्पति कोहरे के आवरण में ढक गई। थोड़ी सी देर में कोहासे ने बादलों का रूप ले लिया और चारों ओर हल्की-सी सफ़ेदी छा गई। सारा का सारा वातावरण एकदम शांत हो गया। पक्षी भी नभ-मंडल में विचरना छोड़कर अपने-अपने नीड़ों में जाने लगे। कभी-कभी शांति को भंग करने के लिए पेड़ों पर उछलते-कूदते बन्दरों के चीखने की आवाज भी सुनाई पड़ जाती थी। वायु की गति बराबर धीमी होने लगी। वायु के उस धीमे प्रवाह में शिशिर के ठंडे मौसम में भी एक बहार-सी आ गई थी। अकस्मात् आकाश से कभी रुई के समान हल्की, कभी झाग की भाँति कोमल और कभी दूध की तरह सफेद हिमफुहारें चारों ओर पड़ने लगीं। दस-पन्द्रह मिनटों में ही सभी ओर बर्फ-ही-बर्फ दिखाई दे रही थी। पहाड़ों की चोटियों पर, मकानों के छप्परों पर, ढलानों पर, सड़क पर, बिजली के तार-खम्भों पर, घाटियों में, सीढ़ीनुमा खेतों पर, हमारी मोटरजीप पर तथा भूमि पर उगी हरी-हरी घास पर बर्फ की एक कोमल दुधिया पर्त पड़ती जा रही थी। बर्फ न केवल धरती पर ही बल्कि पेड़ों की लम्बी-लम्बी डालियों पर भी जम रही थी। इस अद्भुत हिमपात में आनन्द-विभोर होकर एक ओर देवदार के लम्बे-लम्बे पेड़ झूम रहे थे तो दूसरी ओर पर्वतों के प्राङ्गण में बने

छप्परों वाले मकान एस्किमों के इग्लू-से लग रहे थे। कुछ ही देर बाद बर्फ के छोटे-छोटे कण रुई के बनोलों की तरह मोटे-मोटे ओलों में परिवर्तित होने लगे। इन्हें देखकर ऐसा लगा मानो आकाश से चम्पा के फूलों की वर्षा हो रही है। सारा जड़-चेतन आनन्द में डूब उठा ! प्रकृति-सुन्दरी उन्मुक्त वैभव बिखेर कर शुभ्र-श्वेत दोशाला ओढ़े इठलाती हुई मुस्करा रही थी।

हिमपात सचमुच प्रकृति का एक स्वप्न है। राबर्ट बेन्सन ने अपनी एक कविता में ऐसा ही कहा है—

"प्रकृति लेती है स्वप्न और होता है हिमपात !"

कवि की यह अनुभूति कितनी सुन्दर है ! हिमपात को देखते ही ऐसा लगता है मानो परी की कथा आँखों के सामने से घूम रही है। इसके सौन्दर्य में शक्ति होती है जिसका साक्षात् अनुभव हमें हो रहा था। यह हमें सदा के लिए वशवर्ती बना रही थी और इसके दर्शन-मात्र से हमारे हृदय में प्रसन्नता की एक नदी-सी उमड़ने लगी। उस नयनाभिराम हिम के सौन्दर्य-छटा का वर्णन यहाँ करना सम्भव नहीं है। वह सर्वथा अनुपम और अपूर्व था। प्रकृति-सुन्दरी के ऐसे ही रुचिकर स्वरूप की झलक यदि किसी को कभी भी देखने को मिल जाये तो वह आजीवन विस्मृत करने की चीज़ नहीं।

सूर्यास्त

चारों ओर मार्ग में फैले हिम के एकमात्र अखण्ड साम्राज्य का स्थल-स्थल पर रुककर स्वर्गिक सुख लूटते हुए हम शाम तक 'नारकंडा' जा पहुँचे। उस समय बर्फ थम चुकी थी। सूर्य देवता अस्ताचल को जाने की तैयारी कर रहे थे। सन्ध्या के धूमिल प्रकाश में वह धीरे-धीरे हिमराज की हिममंडित चोटियों को अपनी बैंगनी, सिंदूरी, और केसरी किरणों से रंगने लगे। ऊपर आकाश की नीलिमा और नीचे दूर तक पर्वतों पर छाई घूसर बैंगनी अनूठी प्रभा सचमुच देखते ही बनती थी। सारे भूमण्डल का रंग बदल गया था—आदमी की त्वचा का रंग, पेड़ों का रंग, पत्तों का रंग—सब-कुछ

बदल गया था। चारों ओर रंगों की बहार थी, समारोह था, एक नयी दुनिया थी। अज्ञात् ! अपरिचित !

उस रंगीन, विशाल, महान् तथा उच्च नगाधिराज की कल्पनातीत विराटता को देखकर हमें जीवन के आन्तरिक और बाह्य बोध के समन्वित स्वरुप के शान्त रस का विशुद्ध अनुभव होने लगा और हमारे सामने अनायास कविवर श्री सुमित्रा नंदन पंत की ये पंक्तियाँ साकार हो उठीं :—

"नील, बैंगनी, कपिश, पीत,
हरिताभ वर्ण श्री छहरा,
मोहित अन्तर में भर देते,
आदिम विस्मय गहरा,
यह भौतिक ऐश्वर्य,
शुभ्र गरिमा से मन को छू कर,
नीरव आध्यात्मिक विस्मय से,
अन्तर को देता भर।"

अपूर्व दृश्य

नारकंडा में रात्रि-विश्राम के लिए हम सड़क के बाएँ ओर बने डाक बँगला में ठहर गये। वहाँ पर बिस्तरे, कम्बल आदि मिल जाते हैं। डाकबँगले के चौकीदार ने हमारा खाना भी तैयार कर दिया। नारकंडा की आबादी दो-तीन हज़ार के लगभग है। गाँव के सभी घर घास-फूस, झुके हुए छप्परों वाले और पत्थर-मिट्टी के बने हुए हैं। यहाँ से आगे हिन्द-तिब्बत रोड सतलज की धारा के साथ-साथ निरत, रामपुर बुशहर, सराहन, चिनी नामक पर्वतीय स्थानों से होती हुई तिब्बत की सीमा तक जा पहुँचती है। नारकंडा से एक मार्ग सेबों की खान 'कोटगढ़' को भी जाता है, जो वहाँ से नौ मील की दूरी पर है।

रात को भोजन खाने के उपरान्त चहल-कदमी के लिए हमने डाकबँगला से बाहर आकर देखा तो शशिराज अपनी रजत-रुपहली किरणों को दूर-दूर तक बिखेर रहे थे। सितारे चमक रहे थे। थोड़ी-सी

देर में सारा-का-सारा हिमानी प्रदेश चाँदनी में खिल उठा। वातावरण शान्त और सुहावना था। आकाश से अमृत झर रहा था। तब मार्ग की थकान का कहीं नाम तक नहीं था। नस-नस में स्फुरण का रक्त बह रहा था। हिम-शिखर और घाटी में चन्द्रमा की स्वच्छ-शुभ्र-धवल ज्योत्सना को देखकर हम अभिभूत हो उठे और ऐसा लगा जैसे सचमुच हम परियों के देश में आ गये हैं।

वास्तव में ज्योत्सना में डूबी हुई रात का अलौकिक दृश्य यहाँ पर दिखाई देता है और कविवर हरिवंशराय 'बच्चन' के ये छाया-उद्गार हमारे नेत्रों के सामने सहसा झूल उठे :—

> "चाँदनी फैली गगन में चाह मन में,
> दुग्ध उज्जवल मोतियों से युक्त चादर,
> जो बिछी नभ के पलँग पर आज उस पर,
> चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है।"

अरुणोदय

प्रातः उठते ही हमारी दृष्टि सब से पहले प्राची की ओर अकस्मात् खिच गई। पर्वतों की चोटियों पर बर्फ की मात्रा कुछ अधिक थी जिससे बालरवि की सुनहरी किरणों में वह हीरे-पन्ने की भाँति चमक रही थीं। हमारे देखते-ही-देखते भगवान् भास्कर अपने दल-बल सहित रथ लिए दौड़ रहे थे। इसे देखकर ऐसा लगा जैसे हिमसम्राट् के शीत को वह शीघ्र ही परास्त करना चाहते हैं। उस शालीन दृश्य की एक-एक मुद्रा जैसे मन में उतर गई। दूर तक फैली हिमपर्वत-मालाओं पर धूप में किरणों की एक सुनहरी गति थी जो चित्त को किसी अद्भुत शान्ति तक ले जा रही थी। हवा में एक स्फूर्ति और सादगी थी जो मानो उस शान्ति का कोमल स्पर्श देह तक ला रही थी। मैंने मन-ही-मन अरुणोदय के उस सौम्य ऋषि-रूप को प्रणाम किया।

हिमाचल का एक कुली

१२

पहाड़ी कामगर

सूर्योदय के उस सुहावने दृश्य के साथ-साथ हमारे सामने एक पहाड़ी कामगर का चित्र आ गया जो मैदान के कृषक से किसी तरह कम महत्त्व नहीं रखता। यदि मैदान में रहने वाला किसान बड़ी उपज की कामना लेकर पौ फटते ही अपनी कुदाल उठाकर चल देता है तो यह पहाड़ी कामगर भी देश की सम्पदा बढ़ाने के लिए सदैव तत्पर है।

पहाड़ी खेत

ऊँचे पहाड़ों में, पथरीली चट्टानों के बीच प्रायः उपजाऊ मिट्टी की हल्की-सी परतें मिलती हैं, जिनमें अनगनित पेड़-पोधे उगे रहते हैं। यहाँ के निवासियों ने अपनी कठिन मेहनत से ढलानों पर यत्र-तत्र सीढ़ी-नुमा खेत बनाये हैं। सेब, खुमानी, आलूबुखारा आदि फलों के बगीचे उगाए हैं और चाय के बाग खड़े किये हैं। जहाँ कहीं मिट्टी में थोड़ा-सा उपजाऊपन मिल जाता है वहाँ पर यहाँ के किसान खेती करने लगते हैं। यहाँ मक्का, चावल, गेहूँ, जौ, चना, अलसी, हरी सब्जियाँ, और मटर की फसलें उगाई जाती हैं। सारे प्रदेश में आलू और प्याज की खेती बहुतायत से होती है।

भेड़ पालक

पहाड़ी खेत नौ-दस हज़ार फुट की ऊँचाई तक मिलते हैं। इससे ऊपर निरन्तर बर्फ से ढकी रहनी वाली चोटियों की गोद में ग्यारह से चौदह-पन्द्रह हज़ार फुट तक की ऊँचाई पर स्थित हरे-हरे घास के चरागाह भेड़-पालकों को आकर्षित कर यहाँ ले आते हैं। पहाड़ों में भेड़-बकरी पालन एक मुख्य व्यवसाय है। ये लोग नवम्बर से मार्च तक घाटी की तराई के जंगलों में रहते हैं। ज्यों-ज्यों मैदानों में धूप तपने लगती है वे अपने माल-सामान को बांधकर पहाड़ों की ओर बढ़ते हैं और जून-जुलाई के महीनों में ऊँची चरागाहों में पहुँच जाते हैं। गर्मी में बर्फ के पिघलने के बाद यहाँ छोटी-छोटी मखमली घास जिसे पहाड़ी भाषा में 'बुग' कहते हैं, उग आती है। इसी कारण इन चरागाहों का नाम 'बुग्याल' पड़ गया है। बुग्यालों में दो-तीन सौ भेड़-बकरियों का झुण्ड लेकर भेड़-पालक अपना डेरा डाल देते हैं। यह डेरा तम्बुओं का नहीं होता और मकान-झोंपड़ियों का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि पेड़-पौधे तो कई मील नीचे छूट जाते हैं। इनका डेरा तो खुले मैदान में नीले आकाश के नीचे किसी एक बड़ी सपाट-सी चट्टान पर होता है। इस टोली में कुछ स्वामिभक्त कुत्ते भी होते हैं जो दिन में भेड़-बकरियों को लेकर चराने चल देते हैं और शाम को वापस ले आते हैं। सितम्बर-अक्तूबर में जब बुग्यालों में बर्फ पड़ने लगती है तब भेड़ पालक घाटी की तराई में लौट आते हैं। वैसे तो ये लोग अपनी भेड़-बकरियों और कुत्तों के साथ मस्त-जीवन बिताते हुए वहाँ पर संसार

की चिन्ताओं से मुक्त रहते हैं। परन्तु जब पर्वतों की चोटियाँ और बुग्याल घने बादलों से ढक जाता है तब अपने एकाकीपन को भुलाने के लिए वे घर से विदाई के समय पत्नी की दी गई सान्त्वना और प्यार के गीत गुन-गुनाने लगते हैं। कांगड़ा के एक प्रचलित लोकगीत का अर्थ इस प्रकार है—

रुपरण नाम का एक भेड़वाला था। विदाई के समय उसकी पत्नी ने उसे कहा—"हे रुपरण, तुम लाहौल मत जाना, क्योंकि वहाँ की औरतें तुम पर जादू कर देंगी।"

रुपरण ने अपनी प्रेयसी की इस अशंका को भुलाने के लिए उसे अपने घर को लौट आने का समय यों बताया—"पर्वत-चोटी के ऊपर जब घुंघरू बजेगा तब तुम समझ लेना कि तेरे रुपरण का घोड़ा आ गया। जब वहाँ पर कुत्ते भौंकेंगे तब समझ लेना कि तेरे रुपरण का डेला आ गया। अस्सी बकरियाँ और चौरासी भेड़ें जब आएँगी तब समझ लेना कि रुपहरण भेड़वाला आ गया। पानी को रोककर कुण्ड बनाते हुए जब भेड़ों को कोई पानी पिलाएगा तब समझ लेना कि भेड़वाला रुपरण आ गया। जब पर्वत चोटियों पर मुरली बजेगी तब समझ लेना कि तेरा रुपरण आ गया।"

पहाड़ी श्रमिक

पर्वतों में उद्योग-धन्धों के अभाव में और यातायात के साधनों की कमी के कारण रोज़गार एक समस्या है। कुछ लोग तो खेती-बाड़ी और पशु-पालन से अपना निर्वाह करते हैं और शेष मेहनत-मज़दूरी करके अपना तथा अपने बाल-बच्चों का पेट पालते हैं। आप यहाँ के श्रमिकों के बारे में सोचते होंगे कि उनका जीवन प्रकृति के बीच में प्राकृतिक नियमों के अनुकूल और सुन्दरता से परिपूर्ण होगा। पर वास्तव में उनका जीवन इससे विपरीत है। उनकी सब से बड़ी समस्या है उदर-पूर्ति ! पंजाबी की एक कहावत है—

"पेट न पईयाँ रोटियाँ सब्बे गल्लां खोटियाँ।"

यह सच ही है कि 'भूखे भजन न होइ गोपाला।' प्रकृति के बीच

में ये लोग उदर-पूर्ति के लिए काम-काज में इतने चिन्ताग्रस्त रहते हैं कि यहाँ की प्रकृति उनसे कोसों दूर हो जाती है।

जिस वर्ष जिस किसी पर्वतस्थली पर जितने अधिक भ्रमणार्थी और सैलानी पहुँचते हैं, उस वर्ष उतनी ही सुविधा से वहाँ के श्रमिक अपना तथा अपने बाल-बच्चों का पेट पालते हैं। सच पूछा जाए तो इनकी कमाई रईसों और सैलानी लोगों के अधिक संख्या में यहाँ आने पर निर्भर करती है। वे लोग सोगात के रूप में इनके हाथों की बनाई हुई चीज़ें—गर्म चादरें, नमदे, लकड़ी का सामान, पेड़ों की छाल की बनाई गई टोक-रियाँ आदि मोल लेकर ही अपने प्रदेशों को लौटते हैं। दर्शकों के कम आने से इन चीज़ों की माँग भी कम रहती है।

पर्वतीय नारी

यहाँ की स्त्रियाँ खेती-बाड़ी, पशु-पालन और छोटे-मोटे उद्योग-धन्धों जैसे कार्यों में अपने पुरुषों का हाथ बँटाती हैं। सुबह से शाम तक घर और बाहर दोनों तरह के कामों में व्यस्त रहती हैं। वे मील-आध मील से झरने या नदी से पानी लाती हैं। जंगलों में पशुओं के लिये चारा और देख-भाल करती हैं। पर्वतों से पानी लाना, लकड़ी काटना, धान कूटना, खेती की सार-सम्हाल करना, घास निकालना, रोटी बनाना यहाँ की औरतों के लिए एक तरह से अनिवार्य काम हैं।

गूजर स्त्रियाँ बहुत चुस्त और निडर होती हैं। कभी-कभी उन्हें वनों में रहने के कारण भयंकर जीव-जन्तुओं का भी सामना करना पड़ता है। अकेली वे रीछ, तेंदुए आदि का मुकाबला करती हैं। ज्यादा समय वे भेड़े चराने तथा घर का काम-काज करने में व्यतीत करती हैं। पहाड़ी ढलानों पर एकाकीपन को दूर करने के लिए लम्बी लय में गाये हुए उनके 'लामण-झूरी' लोक-गीतों के मधुर स्वर गूँजते सुनाई देते हैं। इन गीतों में कहीं मिलन की मधुरता है तो कहीं वियोग की दाह। ये प्रेम-गीत यहाँ के नारी रूप और पुरुष की सहृदयता का मनोरम चित्र उपस्थित करते हैं। यहाँ के एक लोकगीत में वियोगी प्रेमिका के उद्गार का आशय कुछ इस तरह का है—

"जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा में दाग के कारण कमी होती है उसी प्रकार हे प्रियतम, मेरा पूर्ण शृङ्गार भी तुम्हारे बिना अधूरा है और मैं तुम्हारे मिलन की घड़ियाँ उँगली पर गिनती रहती हूँ।"

पर्वतीय स्त्रियाँ बहुधा अपने सिर पर कपड़े का रूमाल बाँधती हैं। देखने में ये अपने स्वास्थ्य के कारण बहुत ही सुन्दर लगती हैं। मेलों अथवा तीज-त्योहारों पर चाँदी के आभूषणों से युक्त इनके भोले-भाले चेहरों की लालिमा के सामने नगरों की महिलाओं की पाउडर की सफ़ेदी और लिप-इस्टिक की लाली एकदम ऐसे फीकी पड़ जाती है जैसे शशि के निकलने पर अँधेरी रातों में टिमटिमाने वाला सितारों का धीमा प्रकाश।

पर्वतीय कुली

कुली वर्ग का काम बहुत ही मेहनत का होता है। तीन-तीन मन का बोझा उठाए ये लोग पहाड़ के उतार-चढ़ाव में हाँफते हुए देखे जाते हैं। पौ फटते ही सड़कों और चौराहों पर साहब को सरपट घुमाने के लिए रिक्शाओं के साथ तथा उनके लाड़ले बच्चों को पीठ पर बँधी एक विशेष प्रकार की टोकरी में बैठाकर ये मीलों दूर चल देते हैं। रिक्शाओं में विराज-मान रईसों की सजावट और कुलियों की कुशलता देखने और समझने की एक चीज़ होती है।

सर्दी के मौसम में यहाँ भयंकर शीत होता है। गर्मी के दिनों में भी कभी-कभी कड़ी सर्दी पड़ जाती है। कहीं भूल से अपना ही ठण्डा हाथ अपने गाल पर पहुँच जाए तो ऐसा लगता है जैसे किसी ने चांटा कस दिया है। फिर वे कुली और रिक्शा वाले जिनके पास न तो रहने के लिये गर्म कपड़ा है, जो वर्षा की झड़ी में और हिम की फूहारों में किसी एक कोने में सिमट कर सड़क के किनारे या पेड़ के नीचे रात बिता देते हैं और सवेरे ही साहब का संकेत पाते ही रिक्शा के ठण्डे डंडे को पकड़े सरपट सैर कराने चल देते हैं। उनकी यह दशा देख कर मन कांप उठता है।

परन्तु देश भर में नव-निर्माण का योजनाबद्ध जो महायज्ञ चल रहा

है उसके वरद परिणामों को आशा और उत्साह से देखने वाले गीतकार श्री चिरंजीत की कविता 'नई भोर' का यह मुस्कराता हुआ चित्र हमारे सामने एकदम साकार होता हुआ दिखाई देता है:—

''यह भोर हिमालय को चूमे,
खेतों-खलिहनों में झूमे,
गंगा-यमुना की लहरों पर बन स्वर्ण-परी लहराई !
लो, भोर नई मुस्काई !
यह भोर हमारे जीवन की,
भारत के अनगिन जन-गन की,
उठ काम करो, उठ बढ़े चलो, संदेश भोर यह लाई !
लो भोर नई मुस्काई !''

यह खुशी की बात है कि देश के अन्य प्रदेशों की भाँति यहाँ पर भी लघु-उद्योग के विकास तथा नई-नई-नई सड़कों के निर्माण पर ध्यान दिया जा रहा है। इससे पर्वतीय जनता के लिये नियोजन के अवसर बढ़ रहे हैं। शहद इकठ्ठा करना, रेशम के कीड़े पालना, गर्म चादरें और नमदे आदि बुनना, लकड़ी की तरह-तरह की चीज़ें बनाना तथा छोटे-छोटे पैमाने पर किए जाने वाले उद्योगों का विकास हो रहा है। आशा है कि इस योजना के अन्त तक कश्मीर राज्य, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, अल्मोड़ा, भूतान, सिक्किम के पर्वतीय प्रदेशों के हज़ारों श्रमिकों और कुलियों को काम मिलने लगेगा।

पहाड़ी मेले

पहाड़ी कामगर बड़े ही भोले-भाले और परिश्रमी होते हैं। ये लोग धू्मपान खूब करते हैं। यह चीज़ उनके जीवन का अब एक अंग बनकर रह गई है। इनको तीज-त्योहारों को मनाने और गाने-बजाने में विशेष रुचि है। संगीत और नृत्य इन्हें बहुत ही प्रिय है। यहाँ प्रायः हर एक गा सकता है। इनके सारे गीत लययुक्त होते हैं। छोटे-छोटे बच्चे भी गाने-नाचने की कला में निपुण हैं। पहाड़ी गीत-नाच सीखने में स्त्री और पुरुष का कोई भेद

नहीं, वह तो इन लोगों का सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का एक आवश्यक अंग हो गया है। कोई त्योहार तब तक पूर्ण नहीं समझा जाता जब तक उसमें नृत्य और संगीत का कार्यक्रम न हो। यहाँ के निवासियों की तरह तथा प्राकृतिक सौन्दर्य की भाँति यहाँ के लोकगीत व लोकनृत्य भी उतने ही सुन्दर और मधुर हैं। इन गीतों व नृत्यों में यहाँ के जन-साधारण के जीवन की झलकियों के और उनके आन्तरिक उद्गारों का वर्णन मिलता है ऊँचे-ऊँचे पर्वतों, हरे-भरे वृक्षों, नदी-नालों व लहलहाते खेतों में इन्हीं लोकगीतों के मधुर स्वर गूँजते सुनाई देते हैं। ये गीत गाने वाले तथा सुनने वाले दोनों को ही मोह लेते हैं। पर जो आनन्द खेतों में हल चलाता हुआ कृषक, घास निकालती हुई युवति और बड़े-बकरी को चराता हुआ भेड़वाला लेता है वह आनन्द कुछ और ही है। इन गीतों में इतना रस और आनन्द भरा पड़ा है कि यहाँ के युवक-युवतियाँ जो सुबह से शाम तक परिश्रम करते रहते हैं घर लौटते ही घर से बाहर मैदान में या खलिहान में मण्डली के रूप में एकत्रित होकर बड़ी खुशी से गाते हैं। रात्रि की निस्तब्धता में दूर-दूर घाटियों में इनके गाए हुए राग-रागिनियों के स्वर अँधेरे के भूत को भगाते हुए मालूम देते हैं। इससे न केवल उनका स्वल्प सन्तोष ही होता है बल्कि पर्वतीय सौन्दर्य भी मुखरित हो उठता है। वृद्ध स्त्रियाँ और पुरुष अपने घरों के बरामदे में या नृत्य के स्थान के पास एक ओर बैठकर गीत और नृत्य का आनन्द लेते हैं। चाँदनी रातों में यहाँ हर गाँव में इन गीतों के गाने और खंजरी के बजाने के मधुर स्वर सुनाई पड़ते हैं।

पहाड़ी लोग बड़े धर्म-परायण होते हैं। इनके घर-घर में देवी देवताओं की उपासना होती है। हर गाँव का अपना अलग देवता होता है और उनके वास-स्थान पर मेला लगता है। यहाँ हर ऋतु में एक न एक मेला जुड़ता ही रहता है। ये मेले सचमुच पहाड़ी लोगों के जीवन में आनन्द एवं उल्लास का प्रतीक हैं। मेले के स्थान पर रंग-बिरंगे कपड़े पहने यहां की ग्रामीण सुन्दरियाँ और पुरुष बांसुरी, ढोल, खंजरी नरसिंगा आदि के तुमुल ध्वनि से सारे इलाके को ध्वनित कर देते हैं। उनसे जो लोग मेला जाने के लिये उत्सुक भी नहीं होते, वे भी मेले को देखने के लिये घर से बाहर निकल पड़ते हैं।

यहाँ की ग्रामीण स्त्रियाँ अपने मेले के चाव को घर में बैठकर छिपा नहीं पातीं। बरबस इनके पाँव मेले की ओर चल पड़ते हैं, भले ही कई मील की ऊँचाई-निचाई का सफ़र क्यों न करना पड़े। एक लोक-गीत में एक पहाड़ी रमणी का बड़ा ही सुन्दर चित्र अंकित किया गया है—

'बाठिणों चाली जात रे।
घोइओ मूंदू, हारशु आगे ॥''

मेले जाने की तैयारी में रमणी ने खूब सज-धज कर शृङ्गार किया और अपने शरीर को भिन्न-भिन्न आभूषणों से सजाया। उसके सुन्दर हाथों पर लगी मेंहदी और माथे पर सौभाग्य की बिन्दी इतना गजब ढा रही है कि उसे देखने के लिए मन बरबस आकृष्ट हो जाता है। उसके वस्त्र और आभूषण की सुन्दरता का वर्णन करते हुए यह भी कहा है कि उसके चंचल मदभरे नैन किसे बेसुध नहीं कर देंगे और उस रूप-लावण्य को देखकर मेले को कौन नहीं देखेगा। सभी के नेत्र इस रमणी की ओर आकर्षित हो जाएंगे।

कुल्लू का दशहरा

देवताओं की घाटी 'कुल्लू' का दशहरा यहाँ का सबसे बड़ा मेला है। सुल्तानपुर में प्रत्येक वर्ष दस-पन्द्रह हज़ार लोगों का मेला लगता है जो एक सप्ताह तक चलता है। पहाड़ी पुरुष, स्त्रियाँ तथा बच्चे रंग-बिरंगे परिधान पहिने अपने-अपने देवता की सवारी के साथ आते हैं। देवता का रथ 'मेरी गोल्ड' (गेंदा) और नरगिस के सुन्दर फूलों से सजा होता है। इसके आगे-आगे बाजे वाले चलते हैं—ढोल, तमाशा, नरसिंगा और तुरही। पुरुष गेंदे और नरगिस के हार पहनते हैं और स्त्रियाँ लाल चुनरी और काले घाघरे पहने, बहुत-बहुत चाँदी के आभूषण से युक्त आती हैं। सुल्तानपुर में देवदार के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के कुंज में घास का एक विस्तृत मैदान है जहाँ पर सभी एकत्र होते हैं। शाम को सजे-धजे रथ में देवताओं की सवारी निकलती है। उनके उपासक उन्हें मैदान में घुमाते हैं।

सरकारी अतिथिशाला के सामने के मैदान में लाल कपड़े और फूलों से मढ़ा हुआ रघुनाथजी का सजा-सजाया रथ खड़ा रहता है। रघुनाथजी के इस रथ के साथ तीन सौ साठ अन्य पहाड़ी देवता भी चलते हैं। तब समूची घाटी ढोल-तमाशे और तुरहियों से प्रतिध्वनित हो उठती है। काफी रात तक गीत-नृत्य का कार्यक्रम होता रहता है। कार्तिक की चाँदनी से मैदान खिल उठता है। दशहरे के अन्तिम दिन रघुनाथ जी की मूर्ति को व्यास नदी के पास ले जाकर रावण का शिरच्छेद करके रघुनाथजी की अपनी शत्रु पर विजय घोषित की जाती है। इसके बाद रघुनाथजी को एक छोटी-सी पालकी में बैठाकर पुराने राजाओं के प्रासाद में प्रवेश कराते हैं।

मिंजर मेला

हिमाचल के रंग-भरे मेलों में चम्बा और कांगड़ा में मनाया जाने वाला 'मिंजर' मेला भी बड़ी धूम-धाम से जुलाई-अगस्त के महीनों में एक सप्ताह तक मनाया जाता है। सावन के महीने में भारी वर्षा होने के कारण गाँव और नगरों को भारी हानि होती है। यह हानि न हो, इसलिए, मिंजर मेले का शुभारम्भ न जाने कब से हुआ है। इस मेले पर जल के देवता 'वरुण' से प्रार्थना की जाती है कि वे कृपा करके इस प्रदेश में कोई नुकसान न करें।

इस मेले का 'कांगड़ा' में मनाने का एक अलग रिवाज है। कपड़े की रंग-बिरंगी पोटलियों में चने बाँध कर नदी में प्रवाहित किये जाते हैं। यहाँ के लोगों के विचार में वरुण देवता की प्रसन्नता के लिए यह पूजा का उपहार माना जाता है। कांगड़ा की ही भाँति 'चम्बा' में यह मेला एक दूसरे ढंग से मनाया जाता है। यहाँ मक्का पर आये हुए फूल जिन्हें यहाँ की भाषा में 'मंजरी' कहा जाता है, को ले कर नदी में प्रवाहित किया जाता है। पहले-पहल यहाँ पर एक भैंसे को बलि देकर रावी नदी में प्रवाहित किया जाता था। इसकी यह धारणा थी कि यदि यह भैंसा नदी के पार चला गया तो शुभ होगा और यदि इसी ओर लौट आया तो

अशुभ माना जाता था। परन्तु स्वराज्य प्राप्ति के बाद इस प्रथा को बन्द कर दिया है।
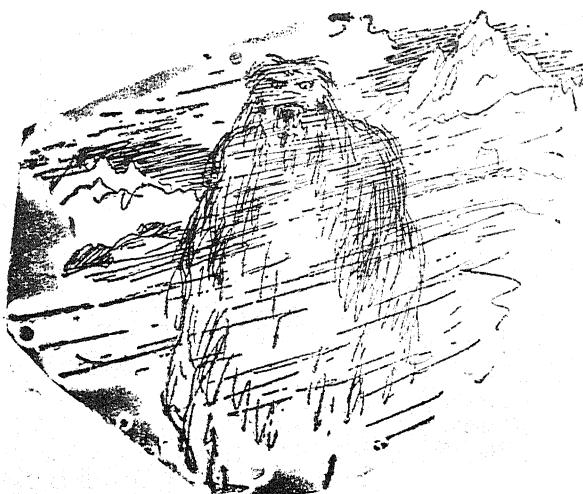
सिपी मेला

शिमला से सात मील दूर देवदार और चीड़ के पेड़ों से घिरी हिमाचल की भावी राजधानी 'मशोबरा' का सिपी मेला गर्मी के मौसम में मई-जून के महीनों में लगता है। इसे देखने के लिए दूर-दूर से पहाड़ी ग्रामीण जनता और शिमला नगरी के हजारों लोग इकट्ठे होते हैं। यहाँ की स्त्रियाँ को आभूषण बहुत प्रिय हैं। चाँदी की लम्बी-लम्बी मालाएँ और कर्णफूल उन्हें विशेष रुचिकर हैं। दर्जनों विवाह योग्य युवक-युवतियाँ इस मेले पर एकत्र होकर अपने मन-पसन्द जीवन-साथी का चुनाव करते हैं। इस मेले को देखकर लगता है जैसे विभिन्न रंग साकार होकर हर्षो-ल्लास मना रहे हों। क्रय-विक्रय और व्यापार भी इस मेले का ध्येय होता है। मनोरंजन के कार्य-क्रमों में भैंसे की लड़ाई का आकर्षण भी बड़ा दिलचस्प होता है।

नन्दाष्टमी

हिमाचल के मिंजर, सिपी और दशहरा के मेलों की ही तरह नन्दाष्टमी भी कुमायूं का एक विशेष मेला है। यह भाद्रपद में पड़ता है और मैदानों में राधाष्टमी के नाम से प्रसिद्ध है। नन्दाष्टमी के दिन नन्दादेवी की पूजा करके उसका डोला (रथ) निकाला जाता है। गोल दायरे में इकट्ठे हुए लोगों से हुड़के की ताल पर लोकगीतों की धुनें उठती हैं जो बरबस अपने में सभी कुछ समेट लेती हैं। नन्दादेवी का यह मेला कुमायूँ के चार नगरों में—नैनीताल, भुवाली, रानीखेत और अल्मोड़ा में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। इस मेले का मुख्य आकर्षण केले के पेड़ से नन्दादेवी की मूर्ति बनाई जाती है। नन्दाकोट पर्वत-शिखर कुमायूं के सभी स्थानों से दिखाई देता है। इसी को आधार मानकर शायद नन्दादेवी के इस मेले का आयो-जन किया जाता है। अल्मोड़ा का यह मेला बहुत ही प्रसिद्ध है। कुमायूँ के सभी भागों के लोग अल्मोड़ा में इसको देखने के लिये इच्छुक रहते हैं।

अल्मोड़ा में नन्दाष्टमी के दिन कुमायूं के प्राचीन राजवंश के लोग आते हैं और मेले का उद्‌घाटन उन्हीं के द्वारा होता है। कुछ लोगों का ऐसा भी विश्वास है कि नन्दा और उसकी बहन इसी राजवंश की राजकन्याएँ थीं। कुमायूं के सांस्कृतिक जीवन की यदि एक झलक देखनी हो तो अल्मोड़ा के नन्दाष्टमी के इस मेले के दिन उसे सुविधा से प्राप्त किया जा सकता है। इस मेले के अवसर पर किसी समय राजा के द्वारा बलिष्ट भैंसे की बलि देने की प्रथा का भी विशेष महत्व रहा है।

हिममानव का एक काल्पनिक चित्र

१३

हिम मानव

आज का भौतिकवादी मानव तीज-त्योहार-मेलों में मस्त पहाड़ी कामगर को देख हैरान होकर यह सोचने लगता है कि अर्थाभाव में इसके पास इतनी खुशी कहाँ से आ गई। पर वह उससे भी अधिक चक्कर में है हिम मानव की गुत्थी सुलझाने में क्योंकि इसके साथ उसका गहरा सम्बन्ध जुड़ा है। केवल 'हिम' शब्द ही बीच में आ गया है। हिम मानव का अर्थ है बर्फीली गुफाओं में रहने वाला आदमी जो हिमालय की ऊँचाई पर छिपकर निवास करता है।

इस अद्भुत प्राणी की खोज पिछले ७० वर्षों से हो रही है। सबसे पहले सन् १८९८ में भारतीय सेना के एक अधिकारी ने इसके कुछ पद-चिह्नों को उत्तरी सिक्किम के बर्फीले प्रदेश में देखा था। उसके बाद सन् १९३३ में एवरेस्ट पर किये गए अभियान के एक पर्वतारोही फ्रैंक सिडनी स्मिथ का अनुभव भी बड़ा ही रोमांचकारी था—

"सताईस हजार फुट की ऊँचाई पर चढ़ते हुए उसे ऐसा लगा जैसे दिन की रोशनी फीकी पड़ गई है और कोहासा छा रहा हो। उसने ऊपर आकाश में देखा कि एक विचित्र-सी आकृति वाले दैत्याकार दो पक्षी उड़ रहे थे। उनमें से एक के पंख बहुत ही मोटे थे और दूसरे की चोंच हाथी की उठी हुई सूंड-जैसी थी। वह डर के मारे जड़वत् हो गया। कुछ देर के लिये वह भ्रम में पड़ा रहा और सोचता रहा कि इतनी ऊँचाई पर कहीं वह किसी मानसिक रोग का तो शिकार नहीं हो गया है। पर बाद में चारों ओर की पर्वत-चोटियों को देखकर उसने उनके नाम दोहराने शुरू किये और उसे लगा कि वह पूरी तरह से होश में है। इसके थोड़ी ही देर बाद बर्फीली हवा का एक तेज झोंका आया और उसने देखा कि वे पक्षी धक्का खाकर बड़े-बड़े पंख फैलाते हुए किसी बर्फ की गुफा में जाकर छिप गये।"

वैज्ञानिक प्रमाण

सन् १९५१ में जंगलों की जाँच-पड़ताल करने वाले एक दल के साहसी नेता एरिक शिपटन ने इसके पद-चिह्नों के फोटो खींचकर संसार के सामने हिम मानव के अस्तित्व का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया। उसने न केवल उसके फोटो ही लिये बल्कि इसके साथ ही आँखों देखी अपनी रोमांचकारी घटना का उल्लेख यों किया है—

"अठारह हज़ार फुट ऊँचे 'मैनलंग' ग्लेशियर को पार करते समय हमने एक स्थान पर हिम मानव के पद-चिह्नों की दुहरी पंक्तियों के निशान देखे। हमने उन निशानों का काफी दूर तक पीछा किया। वे निशान लम्बे-लम्बे डग भरते हुए दो प्राणियों के थे जो कुछ समय पहले वहाँ से होकर

गए थे। वे निशान एक खाई तक पहुँचते ही एकदम गायब हो गये। जैसे ही हम खाई के दूसरे छोर तक पहुँचे, हमें वहीं निशान देखने को फिर मिले। उन्हें देखकर ऐसा लगा जैसे उन दोनों प्राणियों ने खाई को कूद कर पार किया हो। वे निशान भालू और लंगूर की अपेक्षा आदमी से अधिक मिलते-जुलते थे। भालू जब कूदता है तब वह चारों पाँवों पर कूदता है, दो पर नहीं। पर वहाँ तो दो-दो पाँवों के ही निशान थे जो आदमी के कूदने पर बनते हैं।"

इसके दो वर्ष बाद सन् १९५३ में सर जॉन हंट के एवरेस्ट-अभियान दल के एक सदस्य विलफ्रिड नोइस ने एक दिन चाय पीते समय एक विचित्र-सी सीटी-जैसी आवाज सुनी। उसने सोचा कि कोई कुली होगा। शिविर से बाहर आकर देखा तो कोई न था। लौटने पर उसने कुलियों से पूछ-ताछ की तो उन्होंने बताया कि ऐसी आवाज तो हमला करते समय हिम मानव करते हैं। उसके बाद वह खोज पर निकला तो उसने देखा कि सचमुच हिम मानव के पाँवों के निशान दूर तक बने हुए थे। उनको देखकर ऐसा लगा कि जैसे कोई हिम मानव चोटी से उतर कर शिविर तक आया है और फिर किसी कारणवश लौट गया है। सन् १९५५ में कंचन जंगा के पर्वतारोहण में टोनो स्ट्रीकर ने भी ऐसी ही आवाज़ सुनी थी और वहाँ पर सुनी थी जहाँ पर हिम मानव रहते हैं।

यों तो इन कथाओं का कोई अन्त नहीं है। पर एरिक शिपटन के वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत करने के बाद संसार भर के पर्वतारोही, वैज्ञानिक और नृतत्व-शास्त्री हिम मानव की खोज में रुचि लेने लगे। इसकी चर्चा 'डिसकवरी' और 'नेचर' जैसे संसार के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में हो चुकी है, जो इस बात का प्रमाण है कि हिमालय की ऊँचाइयों में हिम मानव की खोज में वैज्ञानिक कितनी रुचि रखते हैं। कुछ वैज्ञानिकों को यह विश्वास भी होने लगा है कि कहीं यह प्राणी मानव के विकास के क्रम की खोई हुई कड़ी तो नहीं है? इसके साथ-ही-साथ कुछ नृतत्व-शास्त्रियों का भी ऐसा ही विचार है कि प्राचीन काल में कुछ मानव हिमालय के बर्फीले प्रदेश में जाकर बस गये थे और उन्हीं के वंशज आज हिम मानव के नाम से पुकारे जाते हैं।

पिछले कुछ वर्षों से कई अभियान-दलों ने हिम मानव को प्रत्यक्ष देखने की कोशिश की है। इसमें ईजार्ड अभियान-दल, स्लिक-जाँनसन अभियान-दल और एडमंड हिलेरी अभियान-दल मुख्य हैं। स्लिक-जॉनसन दल के दो अभियान हुए। पहला सन् १६५७ में और दूसरा उससे अगले ही वर्ष सन् १६५८ में। इस दल से पहले हिम मानव के केवल दो पाँवों पर चलने के निशान ही देखे गये थे परन्तु इस दल के सन् १६५८ के अभियान की दो विस्मयकारी घटनाएँ ये थीं—

पहली घटना

एक बार दो रात तक हिम मानव उनके कैम्प में घुस आए थे और वे लगे सब चीज़ों को इधर-उधर उलटने-पलटने। जब उन्हें खाने-पीने के बर्तनों के गिरने की आवाज़ सुनाई दी तो वे फौरन ही भाग गये। यह देखकर उस दल के कुछ साहसी लोगों ने बाहर आकर देखा तो बर्फीली जमीन पर हिम मानव के लम्बे-लम्बे पाँवों के निशान दिखाई दिये। इस पर उन्होंने हिम मानव का पीछा किया परन्तु वे पकड़ में नहीं आये। हिम मानव के पाँवों की लम्बाई कोई तेरह इंच तक थी।

दूसरी घटना

एक दूसरे अवसर पर दलके कुछ सदस्यों ने हिम मानव के आने की आवाज़ सुनकर उस पर फौरन ही टार्च की रोशनी फैंकी। टार्च की रोशनी को देखते ही वे इतने ज़ोर-ज़ोर से घुर्राने लगे जैसे वे उन्हें खा जाना चाहते हैं। निहत्थे होने के कारण वे लोग उन्हें पकड़ न सके और अपनी जान-बचाकर कैम्प में लौट आये।

रहस्यमय आकृति

हिम मानव के बारे में अब तक जितनी भी जानकारी प्राप्त हुई है, कुल मिलाकर रहस्यमय ही समझी जाती है। उसके शरीर की बनावट, चलने-फिरने का ढंग, भोजन आदि बातों से यह सिद्ध होता है कि हिम

मानव कहलाने वाला प्राणी गोरिल्ला की तरह का ही एक प्राणी होना चाहिए। इसका वज़न डेढ़ से दो-ढाई मन तक और शरीर बहुत ही शक्ति-शाली होता है। उसके शरीर पर सफेद बाल भी होते हैं, क्योंकि प्रकृति के नियमों के अनुसार यह स्वाभाविक ही है कि बर्फीले प्रदेश में रहने वाले इस प्राणी के शरीर पर भयंकर शीत से बचाव के लिए बाल अवश्य ही होने चाहिए।

हिम मानव तीन प्रकार के होते हैं। पहले की लम्बाई तेरह से पन्द्रह फुट तक, दूसरे की लम्बाई पाँच फुट और तीसरे की लम्बाई छः से आठ फुट तक होती हैं। पहले वर्ग के हिम मानव मांसाहारी होते हैं, दूसरे के शाका-हारी और तीसरे के शाक-मांस भक्षी। मांसाहारी हिम मानव के बारे में यह भी कहा जाता है कि वह अपने शिकार को मारकर अन्य पशुओं की भाँति नहीं खाता। वह तो केवल शिकार की आँखें, उंगलियाँ, अंगूठे आदि को ही खाता है और शेष मांस को यों ही छोड़ देता है। इससे यह सिद्ध होता है कि हिम मानव का बौद्धिक विकास अन्य पशुओं की अपेक्षा बहुत ही ऊँचा है।

उल्टे पैर

हिम मानव के हाथ-पाँव के जोड़ आदमी जैसे नहीं होते पर इसके अँगूठे का आकार-प्रकार लगभग वैसा ही होता है जैसे मनुष्य का होता है। इसमें सबसे विचित्र बात यह है कि जब वह भागता है, उसके पैरों के निशान बिल्कुल उल्टी दिशा में मिलते हैं। इससे यह पता चलता है कि या तो हिम मानव के पैर पीछे मुड़े होते हैं या फिर वह पीछे की ओर भागता है, पर अपना मुँह सामने की ओर ही रखता है।

यति की पूजा

कश्मीर से असम तक के सम्पूर्ण हिमालय प्रदेश में इसकी लोककथाएँ प्रचलित हैं। नेपाल के शेरपा, भूटान के मोनवा और गढ़वाल के भोटिया देवी-देवताओं की ही तरह इसकी पूजा आदि करते हैं। यहाँ के लोग इसे

'यती' कहकर पुकारते हैं। पहाड़ी लोक-कथाओं और लोक-गीतों में इसने अपना बहुत ऊँचा स्थान बनाया हुआ है।

वैज्ञानिक परीक्षण

नेपाल-स्थित 'खुमजंग' मठ और 'पैनबोचे' मठ के पास इसकी खोपड़ी भी है। दिसम्बर १९६० में पर्वतारोही एडमण्ड हिलेरी खुमजंग मठ की खोपड़ी को लामा की सहमति से छः सप्ताह के लिए विदेश में ले गया था। शिकागो, फ्रांस और लंदन में इस खोपड़ी की जाँच-पड़ताल हुई और वायुयान से ही पाँच जनवरी १९६१ को उसने इसे वापस लाकर लौटा दिया गया क्योंकि इस खोपड़ी को उस दिन तक पहुँचाना आवश्यक था। उस मठ के मुख्य लामा का कहना था कि यदि यह उस दिन तक लौटकर मठ में वापस नहीं आई तो मठ पर संकट आ जायेगा। इस खोपड़ी के बालों तथा चमड़े का विदेशों में परीक्षण हुआ और इसका परिणाम यह निकला कि वे बाल किसी मनुष्य के तो नहीं हैं परन्तु अभी तक जाने हुए किसी जाति के बन्दर और भालू के भी नहीं हैं। वे किसी ऐसे प्राणी के हैं जिसे वे नहीं जानते। इस तरह अब यह तो एक प्रकार से निश्चित हो गया है कि हिमालय की ऊँचाई में मिलने वाले ये पदचिह्न किसी ऐसे प्राणी के हैं जिसे हम नहीं जानते। पर आखिर वह प्राणी कौन है? उसकी आकृति कैसी है और उसका भोजन क्या है? उसके पैर उल्टे हैं या फिर वह उल्टी दिशा में ही भागता है। ये सभी बातें अभी तक रहस्यमय और अनुमान का विषय ही बनी हुई हैं। पूर्ण आशा है प्रकृति की अनेक गुत्थियों की भाँति हिम मानव की यह गुत्थी भी शीघ्र ही सुलझ जायेगी।

परिशिष्ठ—१

हिमालय प्रदेश

शिखर—	ऊँचाई	
१. माउएट एवरेस्ट	२९,०२८	फुट समुद्र-तल से
२. कंचनजंघा	२८,१४६	,, ,,
३. कंचनजंघा (द्वितीय)	२७,८०३	,, ,,
४. चो श्रो यू	२६,८६७	,, ,,
५. धौलगिरि	२६,७९५	,, ,,
६. नांगा पर्वत	२६,६६६	,, ,,
७. अन्नपूर्णा	२६,४९३	,, ,,
८. अन्नपूर्णा (द्वितीय)	२६,०४१	,, ,,
९. ग्याछुंग	२५,९१०	,, ,,
१०. साउथ कोल	२५,८५०	,, ,,
११. नुपत्से	२५,६८०	,, ,,
१२. नन्दादेवी	२५,६६०	,, ,,
१३. कामेत	२५,४४३	,, ,,
१४. अन्नपूर्णा (तृतीय)	२४,८२८	,, ,,
१५. त्रिशूल	२३,४९९	,, ,,
१६. त्रिशूल पूर्वी	२३,३६०	,, ,,
१७. पंचुली	२२,६६१	,, ,,
१८. नन्दाकोट	२२,५३०	,, ,,
१९. चौखम्बा	२२,३१५	,, ,,
२०. कैलाश	२२,०२८	,, ,,
२१. नीलकंठ	२१,६४०	,, ,,
२२. नन्दाघुंटी	२१,२८६	,, ,,

परिशिष्ठ—२

हिमालय प्रदेश

ग्लेशियर—	ऊँचाई
१. लाहोत्से	२७,८९० फुट समुद्र-तल से
२. मैनलंग	१८,००० " "
३. खुम्बू	१७,००० " "
४. भगीरथ	१६,००० " "
५. कोलहाई	१४,००० " "
६. पिण्डारी	१२,०८९ " "
झीलें—	
१. रूपकुण्ड	१६,००० " "
२. मानसरोवर	१५,९५० " "
३. हेमकुण्ड	१४,००० " "
४. शेषनाग	११,७३० " "
५. गोहना	६,००० " "
६. वुलर	५,२१० " "
७. भीमताल	५,२०० " "
झरने—	
१. वशिष्ठ	८,००० " "
२. वेरीनाग	६,१०० " "
३. केम्पटी प्रपात	४,५०० " "
४. सहस्त्रधारा	२,५०० " "
५. तत्तापानी	१,७०० " "
क्रीड़ास्थल—	
१. गुलमर्ग	८,७०० " "
२. कुफरी	८,६०० " "

परिशिष्ठ—३

हिमालय प्रदेश

गुफाएँ—	ऊँचाई		
१. अमरनाथ	१२,७२९	फुट	समुद्र-तल से
२. व्यास	१०,३००	,,	,,
३. वेष्णोदेवी	५,३००	,,	,,
तीर्थस्थल—			
१. गोमुख	१२,७७०	,,	,,
२. केदारनाथ	११,७५३	,,	,,
३. गंगोत्री	१०,३००	,,	,,
४. जमनोत्री	१०,३००	,,	,,
५. बद्रीनाथ	१०,२४४	,,	,,
सैनिटोरियम—			
१. कसोली	६,३३५	,,	,,
२. टनमर्ग	६,०००	,,	,,
३. भुवाली	५,६००	,,	,,
४. बटोट	५,११६	,,	,,
५. धर्मपुर	४,०००	,,	,,
दर्रे—			
१. लीपूलेख	१६,७८०	,,	,,
२. नीती	१६,६२८	,,	,,
३. माना	१६,६००	,,	,,
४. मरही	१६,३८०	,,	,,
५. महागुनस	१४,७००	,,	,,
६. शिपकीला	१४,०००	,,	,,
७. रोहतांग	१३,०००	,,	,,
८. जोजीला	१२,५००	,,	,,

परिशिष्ठ—४

भारत के ग्रीष्मावास स्थल

		ऊँचाई		
१.	मनाली	८,०००	फुट	समुद्र-तल से
२.	पहलगाम	७,२००	"	"
३.	शिमला	७,०८४	"	"
४.	दार्जिलिंग	७,००२	"	"
५.	कोडाईकनाल	७,०००	"	"
६.	ऊटकमण्ड	७,०००	"	"
७.	रानीखेत	६,९४२	"	"
८.	चकरौता	६,७५०	"	"
९.	डलहौजी	६,७४०	"	"
१०.	मसूरी	६,५००	"	"
११.	नैनीताल	६,३५०	"	"
१२.	लेन्सडौन	६,०००	"	"
१३.	अलमोड़ा	५,३००	"	"
१४.	पौड़ी	५,३९०	"	"
१५.	श्रीनगर (कश्मीर)	५,२१४	"	"
१६.	शिलांग	५,०००	"	"
१७.	धर्मशाला	४,५००	"	"
१८.	माऊण्ट आबू	४,०००	"	"
१९.	कुल्लू	३,९९४	"	"
२०.	पचमढ़ी	३,५००	"	"
२१.	चम्बा	३,०३७	"	"
२२.	मण्डी	३,००६	"	"
२३.	बंगलौर	३,०००	"	"
२४.	रांची	२,२००	"	"

परिशिष्ठ—५

ये सर्वश्रेष्ठ

भारत में—		ऊँचाई
१. ऊँचा पर्वतशिखर	नन्दादेवी (कुमायूं)	ऊँचाई २५, ६०० फुट
२. बड़ी झील	बुलर (कश्मीर)	परिमिति ४५ मील
३. लम्बी नहर	राजस्थान (पंजाब)	लम्बाई ४३० मील जिसमें अभी तक यह १३४ मील तैयार हुई है
४. ऊँची कन्दरा	अमरनाथ (कश्मीर)	परिमति २१० फुट ऊँचाई १२,७२६ फुट
संसार में—		
१. ऊँचा पर्वतशिखर	माऊण्ट एवरेस्ट (नेपाल)	ऊँचाई २६,०२८ फुट
२. ऊँचा ग्लेशियर	लाहोत्से (नेपाल)	ऊँचाई २७,८६० फुट
३. बड़ा ग्लेशियर	बियर्डमोर (दक्षिणी ध्रुव)	लम्बाई १०० मील
४. ऊँची झील	मानसरोवर (तिब्बत)	परिमति ६० मील और ऊँचाई १४,६५० फुट
५. ऊँची पुष्पवाटिका	नन्दनवन (भारत)	लम्बाई ५ मील ऊँचाई १४,०० फुट
६. बड़ी कृत्रिम झील	जयसमन्द (भारत)	परिमति ३० मील
७. बड़ा बांध	भाखड़ा (भारत)	ऊँचाई ७४० फुट
८. बड़ाप्रपात	गिरस्प्पा (भारत)	ऊँचाई ६६० फुट
९. तैरतापर्वत	कोलोरेडी नदी पर (अमरीका)	लम्बाई २१७ मील चौ० ४ से १८ मील और गहराई १ मील
१०. स्केटिंग मैदान	फ्रीज़लैण्ड (नीदरलैण्ड)	लम्बाई १२५ मील